CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्रीमद्देवसेनसूरिविरचिता

आलापपद्धतिः

अनुवादक–
स्व. श्री न्या. वा. पं० हजारीलालजी न्यायतीर्थ

संपादक व संशोधक–
पं० फुलचंदजी सिद्धांतशास्त्री

प्रकाशक–
श्री सकल दिगंबर जैन पंचान, नातेपुते. (सोलापूर)

मिती श्रावण वा॥ ८
वीर संवत् २४६०

किंमत ।। रुपया

प्रति १०००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थका महत्व—

वैसे तो जैनधर्मका साहित्यिक भंडार अपरमित है और उसमें गुण, पर्याय और स्वभाव आदिका वर्णन करनेवाले कई महत्वशाली ग्रंथ हैं। परन्तु इस ग्रंथमें जिस पद्धतिके अनुसार विषयविवेचन किया गया है वह पद्धति निराली और अपूर्व है। इसमें गुण, पर्याय, स्वभाव, उपनय, गुणोंकी व्युत्पत्ति, पर्यायकी व्युत्पत्ति, स्वभावोंकी व्युत्पत्ति, स्वभाव और गुणोंमें भेद, पदार्थोंको सर्वथा अस्ति आदि एक स्वभाव माननेमें दूषण, नयदृष्टिसे वतुस्वभाववर्णन, प्रमाणका लक्षण, व्युत्पत्ति और उसके भेद; नयका लक्षण, व्युत्पत्ति और उसके भेद, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयकी तथा उनके भेदोंकी व्युत्पत्ति और नय तथा उपनयोंके स्वरूपका वर्णन है। इस ग्रंथकी रचना संस्कृत गद्यमें है भाषा सरल है। बीच बीचमें दूसरे ग्रंथोंके भी श्लोकरूपमें मूल विषयकी पुष्टि करनेवाले प्रमाण उद्धृत किये हैं।

ग्रन्थकर्ता —

इस ग्रंथके कर्ता श्री **देवसेनसूरि** हैं। आलापद्धातिके सिवाय आपने दर्शनसार, भावसंग्रह, आराधनासार और तत्वसार आदि कई महत्वपूर्ण ग्रंथोंकी रचना की है। श्रद्धेय पं० **नाथूरामजी प्रेमीने** नयचक्रादि संग्रहकी प्रस्तावनामें श्री देवसेनसूरिके विषयमें बहुत कुछ लिखा है। हमारी इच्छा थी कि इस ग्रंथकी स्वतंत्र प्रस्तावना उन्हींसे लिखाई जावे। इसके लिए हमने आपसे प्रार्थना भी की थी परन्तु आपका स्वास्थ्य अशक्त होनेके कारण आपने प्रस्तावना लिखनेसे असमर्थता प्रगट की है। अस्तु. श्रद्धेय पं० नाथूरामजी प्रेमीने श्री देवसेनसूरिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयमें जो कुछ लिखा है उससे अधिक या उससे विरुद्ध आज समालोचनात्मक और कुछ भी इतिहास नहीं पाया जाता है इसलिए उसीके आधारसे यहांपर श्री देवसेनसूरिके विषयमें खुलासा किया जाता है— श्रीदेवसेनसूरिके जन्मस्थान, जन्मतिथि आदिका विशेष पता नहीं लगता तो भी वे कब हुए और किस आम्नायके थे इत्यादि बातोंसे उनके जीवनपर बहुत कुछ प्रकाश पडजाता है। श्री देवसेनसूरिने अनेक ग्रंथोंकी रचनाके साथ नय-चक्रकी भी रचना की है। तथा श्री आचार्य विद्यानंदिने भी सात नयोंका वर्णन करते हुये अंतमें एक नयचक्रका उल्लेख किया है। परंतु जो श्री देवसेनसूरिकृत नयचक्र आज कल प्रसिद्ध है उसका श्री विद्यानंदि आचार्यके द्वारा उल्लेख किये हुये नयचक्रसे कोई सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता। कारण कि श्री स्वामी नववीं शताब्दिके और श्री देवसेनसूरि दशवीं शताब्दिके विद्वान् हैं, इसलिये स्वामी विद्यानंदि द्वारा श्री देवसेनसूरिकृत नयचक्रका उल्लेख करना किसी प्रकार भी संभव नहीं हैं। स्वामी विद्यानंदि नववीं शताब्दिके विद्वान् हैं यह श्लोकवार्तिक आदिकी भूमिकासे विदित हो ही जाता है तथा श्री देवसेनसूरिने अपनेको दशवीं शताब्दिका स्वयं उल्लेख किया है। वे दर्शनसारके अंतमें लिखते हैं

पुव्वायरियकयाई गाथाई संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥ ४९ ॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥ ५० ॥

अर्थात् पूर्वाचार्यों द्वारा रची हुई गाथाओंको एक जगह संचय करके श्री देवसेनगणिने धारानगरी (मालवा) में निवास करते हुये श्री पार्श्वनाथके मंदिरमें माघ सुदी दशवीं संवत् ९९० को यह मनोहर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थका महत्व—

वैसे तो जैनधर्मका साहित्यिक भंडार अपरमित है और उसमें गुण, पर्याय और स्वभाव आदिका वर्णन करनेवाले कई महत्वशाली ग्रंथ हैं। परन्तु इस ग्रंथमें जिस पद्धतिके अनुसार विषयविवेचन किया गया है वह पद्धति निराली और अपूर्व है। इसमें गुण, पर्याय, स्वभाव, उपनय, गुणोंकी व्युत्पत्ति, पर्यायकी व्युत्पत्ति, स्वभावोंकी व्युत्पत्ति, स्वभाव और गुणोंमें भेद, पदार्थोंको सर्वथा अस्ति आदि एक स्वभाव माननेमें दूषण, नयदृष्टिसे वतुस्वभाववर्णन, प्रमाणका लक्षण, व्युत्पत्ति और उसके भेद; नयका लक्षण, व्युत्पत्ति और उसके भेद, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयकी तथा उनके भेदोंकी व्युत्पत्ति और नय तथा उपनयोंके स्वरूपका वर्णन है। इस ग्रंथकी रचना संस्कृत गद्यमें है भाषा सरल है। बीच बीचमें दूसरे ग्रंथोंके भी श्लोकरूपमें मूल विषयकी पुष्टि करनेवाले प्रमाण उद्धृत किये हैं।

ग्रन्थकर्ता—

इस ग्रंथके कर्ता श्री **देवसेनसूरि** हैं। आलापद्धतिके सिवाय आपने दर्शनसार, भावसंग्रह, आराधनासार और तत्वसार आदि कई महत्वपूर्ण ग्रंथोंकी रचना की है। श्रद्धेय पं० **नाथूरामजी प्रेमीने** नयचक्रादि संग्रहकी प्रस्तावनामें श्री देवसेनसूरिके विषयमें बहुत कुछ लिखा है। हमारी इच्छा थी कि इस ग्रंथकी स्वतंत्र प्रस्तावना उन्हींसे लिखाई जावे। इसके लिए हमने आपसे प्रार्थना भी की थी परन्तु आपका स्वास्थ्य अशक्त होनेके कारण आपने प्रस्तावना लिखनेसे असमर्थता प्रगट की है। अस्तु. श्रद्धेय पं० नाथूरामजी प्रेमीने श्री देवसेनसूरिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयमें जो कुछ लिखा है उससे अधिक या उससे विरुद्ध आज समालोचनात्मक और कुछ भी इतिहास नहीं पाया जाता है इसलिए उसीके आधारसे यहांपर श्री देवसेनसूरिके विपयमें खुलासा किया जाता है— श्रीदेवसेनसूरिके जन्मस्थान, जन्मतिथि आदिका विशेष पता नहीं लगता तो भी वे कब हुए और किस आम्नायके थे इत्यादि बातोंसे उनके जीवनपर बहुत कुछ प्रकाश पडजाता है। श्री देवसेनसूरिने अनेक ग्रंथोंकी रचनाके साथ नय-चक्रकी भी रचना की है। तथा श्री आचार्य विद्यानंदिने भी सात नयोंका वर्णन करते हुये अंतमें एक नयचक्रका उल्लेख किया है। परंतु जो श्री देवसेनसूरिकृत नयचक्र आज कल प्रसिद्ध है उसका श्री विद्यानंदि आचार्यके द्वारा उल्लेख किये हुये नयचक्रसे कोई सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता। कारण कि श्री स्वामी नववीं शताब्दिके और श्री देवसेनसूरि दशवीं शताब्दिके विद्वान् हैं, इसलिये स्वामी विद्यानंदि द्वारा श्री देवसेनसूरिकृत नयचक्रका उल्लेख करना किसी प्रकार भी संभव नहीं हैं। स्वामी विद्यानंदि नववीं शताब्दिके विद्वान् हैं यह श्लोकवार्तिक आदिकी भूमिकासे विदित हो ही जाता है तथा श्री देवसेनसूरिने अपनेको दशवीं शताब्दिका स्वयं उल्लेख किया है। वे दर्शनसारके अंतमें लिखते हैं

पुव्वायरियकयाई गाथाई संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥ ४९ ॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥ ५० ॥

अर्थात् पूर्वाचार्यों द्वारा रची हुई गाथाओंको एक जगह संचय करके श्री देवसेनगणिने धारानगरी (मालवा) में निवास करते हुये श्री पार्श्वनाथके मंदिरमें माघ सुदी दशवीं संवत् ९९० को यह मनोहर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनसार ग्रन्थ रचा।

श्री माइल्लधवलने द्रव्यस्वभावप्रकाश नामक ग्रन्थके अन्तमें एक गाथा दी है जिसका भाव इस प्रकार है कि " दुःषमकालरूपी आंधीसे जहाजके समान जो नयचक्र चिरकालसे नष्ट होगया था उस प्रकारका नयचक्र देवसेनमुनिने फिरसे रचा। गाथा इसप्रकार है—

दुसमीरणेण पोयप्पेरियसंतं जह चिरं णट्ठं।
सिरिदेवसेणमुणिणा तह णयचक्कं पुणा रइयं ॥ ४२३ ॥

इस गाथामें जो " पुनः " पदका उल्लेख किया है इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिस नयचक्रका श्री विद्यानंदिस्वामीने उल्लेख किया है वह नयचक्र वर्तमानमें उपलब्ध नयचक्रसे भिन्न था। श्लोकवार्तिक-कारका प्रयोजन यदि देवसेनसूरिकृत नयचक्रसे हो तो जिन नयोंका वर्णन विद्यानंदस्वामीने श्लोकवार्तिकमें किया है उनका भाव नयचक्रके वर्णनेसे कुछ भी तो मिलना चाहिये। परंतु दोनोंके वर्णनमें बहुत कुछ अंतर है। विद्यानंदिस्वामी नैगमनयके ९ भेद करते हैं तो नयचक्रकार भूत, भावि और वर्तमान कालके भेदसे केवल तीनही भेद करते हैं। उसी प्रकार संग्रहनय, व्यवहारनय और ऋजुसूत्रनयके नयचक्रमें दो दो भेद किये हैं परंतु श्लोकवार्तिकमें उनका एक भी भेद नहीं मिलता है। नयचक्रमें नयोंके दो, नौ अथवा अट्ठावीस भेद मिलते हैं तो श्लोकवार्तिककार कुल १५ भेद करके ही छोड़ देते हैं। तात्पर्य इतना ही है कि विद्यानंदिस्वामीने जिस नयचक्रके विषयमें उल्लेख किया है वह नयचक्र श्री देवसेनसूरिके समयमें नष्ट हो चुकाथा यह श्री माइल्लधवलका उल्लेख विल्कुल निश्चित प्रतीत होता है। अतएव पूर्वोक्त कथनसे यह निश्चित हो जाता है कि श्री देवसेनसूरि श्री विद्यानंदिस्वामीके बादके हैं। यही बात स्वयं देवसेनसूरिकृत दर्शनसारकी गाथाओंसे भी प्रगट होती है जैसा कि ऊपर उल्लेख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया जा चुका है। इस तरह श्री देवसेनसूरिको वि. सं. ९९० अर्थात् दशवीं शताब्दिके आचार्य निश्चित हो जाने पर अब हमें यह देखना है कि नयचक्रके कर्ता और आलापपद्धतिके कर्ता क्या एक ही देवसेनसरि हैं।

आलापद्धतिके अंतमें "**इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीमद्देवसेनविरचिता परिसमाप्ता**" इस प्रकारका पाठ है। इससे यह ग्रंथ देवसेनसूरिकृत है यह निश्चित होजाता है। तथा ग्रंथके आदिमें "**आलाप-पद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते।**" ऐसा पाठ है इससे भी प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ स्वयं देवसेनसूरिने बनाया है। यद्यपि आलापपद्धतिमें केवल नयोंका ही वर्णन नहीं है किंतु गुण, स्वभाव, पर्याय प्रमाण और निक्षेपादिका भी वर्णन है तो भी नयचक्रमें जिस प्रकार नयोंका वर्णन है ठीक उन्हींका प्रतिबिम्बरूप आलापपद्धतिका नयवर्णन प्रकरण समझना चाहिये यही एक ऐसा प्रमाण है कि जिससे नयचक्र और आलापपद्ध-तिके देवसेनसूरिमें, कुछभी अंतर नहीं रहता है।

ये श्री विमलसेन आचार्यके शिष्य थे जैसा कि उन्होंने स्वयं भावसंग्रहके अंतमें प्रगट किया है

सिरिविमलसेणगणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति।
अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥ ७०१ ॥

अर्थात्– श्री विमलसेनगणधर (आचार्य) के शिष्य श्री देवसेनने अज्ञानी जनोंके ज्ञान करानेके लिये इस भावसंग्रह ग्रंथकी रचना की। और आचार्योंकी अपेक्षा इनकी श्रद्धा कुंदकुंदभगवान्के विषयमें बहुतही अधिक थी। इस विषयका उन्होंने स्वयं दर्शनसारमें उल्लेख किया है इससे यह भी निश्चित हो जाता है कि ये मूलसंघ और कुंदकुंद आम्नायके आचार्य थे। सबका निचोड इतना है कि श्री देवसेनसूरि दशवीं शताब्दिके आचार्य हैं ये श्री विमलसेन आचार्यके शिष्य थे। इनका मूलसंघ और कुंदकुंदाम्नाय थी। इनका जीव–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकाल अधिकतर मालवा प्रांतमें व्यतीत हुआ।

अनुवादकका परिचय

हम ऊपर ही लिख आये हैं कि इस ग्रंथका अनुवाद श्रीमान् न्यायवाचस्पति पं. हजारीलालजीने किया है। इनका मूल निवास स्थान सागर जिलांतर्गत परसौन गांव था। इनका प्रवेशिकासे लेकर अंतपर्यंत शिक्षण श्री सत्तर्कसुधातरंगणी दिं० जैन पाठशाळा सागर (सी० पी०) में हुआ था। इनका लग्न बीना निवासी श्री सर्राफ रामचंदजीकी लघु पुत्री राधाबाईके साथ हुआ था। ये व्युत्पन्न, स्वभावके मिलनसार और होनहार विद्वान् थे। परन्तु लिखते दुःख होता है कि ये अपनी एक पुत्री और धर्मपत्नीको छोडकर करीब ३० वर्षकी अवस्थामें ही इस संसारसे विदा ले गये। आजकल इनकी धर्मपत्नी इंदौरस्थ "श्री कंचनबाई श्राविकाश्रममें धर्मशिक्षण लेतीं हैं। आशा है प्रिय भगिनी राधाबाई योग्य धार्मिक शिक्षण लेकर समाजका और अपना कल्याण करेंगीं।

आभार

यह ग्रंथ श्री सकल दि० जैन पंच नातेपुते (सोलापूर) वालोंने प्रकाशित कराया है। इसलिये कहना चाहिये कि इस ग्रंथके प्रकाशनमें यहांकी स्थानीय समाजने विशेषकर हमारे परममित्र श्री गांधी तलकचंद नथूरामजी शास्त्री तथा प्रियबंधु श्री. भाईचंद नेमचंद गांधीने विशेष मदद दी है इसलिए वे अनेक धन्यवादके पात्र हैं। तथा हमें मालूम हुआ है कि इस ग्रंथका अनुवाद श्री. पं हजारीलालजीने कारंजामें रहकर किया है, अतएव श्री १०५ परमपूज्य क्षु० समंतभद्रस्वामी तथा पूज्य गुरुवर्य व्याख्यानवाचस्पति पं० देवकीनंदनजी सिद्धांतशास्त्रीकी इस ग्रंथके अनुवादमें सहायता मिलनेसे उनके हम कृतज्ञतापूर्वक अत्यंत आभारी हैं। तथा श्रीमान् दानवीर सेठ रामचंद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनजीने इस छापखानेको अपने पूज्य पिता श्री. सेठ धनजी मियाचंदके नामसे स्थापित करके जो जैन साहित्यके प्रकाशनमें सहायता की इसके लिए उनका जितना भी आभार माना जावे थोडा है। उसीप्रकार चि० पं० भैया-लालजी शास्त्रीने हमारी अनुपस्थितिमें संशोधन आदि करके व प्रियबंधु श्री गुणपाल दादा कर्तेने इस ग्रंथका जो परिश्रमपूर्वक संशोधन व छपाई की उसके लिए हम उनके भी आभारी हैं।

समाजसेवक,

पं० फूलचंद जैन, सिलावन (झांसी.)

विषयानुक्रमणिका.

नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	मंगलाचरण, आलापपद्धतिका आधार और उसका प्रयोजन	१–४
२	द्रव्योंकी संख्या और जीवादिद्रव्योंका विशेष कथन	४--९
३	द्रव्यका लक्षण	१०
४	सत्का लक्षण	११
५	सामान्य गुणोंकी संख्या और उनका स्वरूप	१३ १४
६	प्रत्येक द्रव्यमें पाये जानेवाले सामान्य गुणोंकी संख्या और उनका विशेष खुलासा	१५-१६
७	विशेष गुणोंके नाम तथा प्रत्येक द्रव्यमें संभव गुणोंकी संख्या	१६-२०
८	पर्यायका लक्षण और उसके भेदोंका कथन	२०-२८
९	द्रव्यका लक्षण	२९
१०	सामान्य स्वभाव और विशेष स्वभावोंके नाम तथा प्रत्येक द्रव्यमें उनकी संभावना	२९-३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नं.	विषय	पृष्ठ नं.
११	स्वभावोंके जाननेके कारण	३२
१२	प्रमाणका लक्षण और उसके भेदोंका विशेष कथन.	३२-४९
१३	नयका स्वरूप और उसके भेदोंका कथन	५०-५२
१४	निश्चयनयके भेद	५२-५३
१५	उपनयका लक्षण और उसके भेदोंका कथन	५३-५५
१६	अध्यात्मद्रव्यार्थिकनयके १० भेदोंका दृष्टांतसहित वर्णन	५५-५९
१७	पर्यार्थिकनयके ६ भेदोंका दृष्टांत सहित वर्णन	५९-६३
१८	नैगम, संग्रह और व्यवहारनयका स्वरूप	६३-६४
१९	नैगमनयके ३ भेद और उनका दृष्टांत-सहित कथन	६४-६६
२०	संग्रहनयके २ भेद और उनका दृष्टांत सहित कथन.	६६-६७
२१	व्यवहारनयके २ भेद और उनका दृष्टांत सहित कथन	६७-६९
२२	ऋजुसूत्रनयके २ भेद और उनका दृष्टांत सहित कथन	७०

नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२३	शब्द समभिरूढ और एवंभूतनयका दृष्टांत सहित स्वरूप ..	७१-७६
२४	सातों नयोंको द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक तथा अर्थनय और शब्दनय कहनेका कारण	७६
२५	सातों नयोंका उत्तर उत्तर अल्प विषय अथवा पूर्व पूर्व महाविषयका खुलासा.	७६-७८
२६	उपनयके भेद	७८
२७	सद्भूतव्यवहारनयके दो भेद और उनका लक्षण ..	७८-७९
२८	असद्भूतव्यवहारनयके ३ भेद और उनका लक्षण ..	७९-८१
२९	उपचरितासद्भूतव्यवहारनयके ३ भेद और उनका लक्षण ..	८१-८४
३०	गुणका लक्षण	८४-८५
३१	पर्यायका लक्षण	८५
३२	गुणकी व्युत्पत्ति	८५-८६
३३	अस्तित्वकी व्युत्पत्ति	८६
३४	वस्तुत्वकी व्युत्पत्ति	८६
३५	वस्तुका स्वरूप	८६-८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३६	द्रव्यत्वसामान्यगुणकी व्युत्पत्ति	८७
३७	द्रव्यशब्दकी व्युत्पत्ति	८७
३८	प्रकारांतरसे द्रव्यका लक्षण	८७-८८
३९	सत्की व्युत्पत्ति	८८
४०	प्रकारांतरसे सत्का लक्षण	"
४१	प्रमेयत्वकी व्युत्पत्ति	"
४२	प्रमेयका लक्षण	८८ ८९
४३	अगुरुलघुत्वकी व्युत्पत्ति और उसका स्वरूप	८९–
४४	प्रदेशत्वकी व्युत्पत्ति	९०
४५	प्रदेशका लक्षण	९१
४६	चेतनत्वकी व्युत्पत्ति	९१
४७	अचेतनत्वकी व्युत्पत्ति	९२
४८	मूर्तत्वकी व्युत्पत्ति	९२
४९	अमूर्तत्वकी व्युत्पत्ति	९२
५०	पर्यायकी व्युत्पत्ति	९३
५१	अस्ति आदि सामान्य ११ स्वभावोंकी व्युत्पत्ति	९३-९६
५२	स्वभाव और गुणोंमें भेद	९७
५३	विभाव, शुद्ध, अशुद्ध और उपचरित स्वभावकी व्युत्पत्ति	९७-९९

नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५४	सर्वथा सत् और असत् पक्ष माननेमें दोष	१००-१०१
५५	सर्वथा नित्य पक्ष और अनित्य पक्ष माननेमें दोष	१०१-१०२
५६	सर्वथा एकपक्ष माननेमें दोष	१०२
५७	सर्वथा अनेक पक्ष माननेमें दोष	१०३
५८	सर्वथा भेद और अभेदपक्ष माननेमें दोष	१०३-१०४
५९	सर्वथा भव्यस्वभाव माननेमें दोष	१०४
६०	संकर आदि आठ दोषोंका खुलासा	१०५-१०६
६१	सर्वथा अभव्यस्वभावके माननेमें दोष	१०६
६२	सर्वथा स्वभाव और विभावपक्षके माननेमें दोष	१०६-१०७
६३	सर्वथा चैतन्यपक्षमें दोष	१०७-१०८
६४	सर्वथा शब्दके विषयमें विचार	१०८-१०९
६५	सर्वथा अचैतन्यपक्षमें दोष	१०९
६६	सर्वथा मूर्त और अमूर्त स्वभावके माननेमें दोष	१०९-११०
६७	सर्वथा एक प्रदेशस्वभाव और अनेक प्रदेशस्वभाव माननेमें दोष	११०-१११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नं.	विषय	पृष्ठ नं.
६८	सर्वथा शुद्ध और अशुद्ध स्वभाव माननेमें दोष	१११
६९	सर्वथा उपचरित और अनुपरित स्वभाव माननेमें दोष	११२
७०	नयदृष्टिसे द्रव्योंमें स्वभाव विचार	११३-११९
७१	प्रमाणका लक्षण और भेद व उनका स्वरूप	१२०-१२१
७२	नयका स्वरूप और उसके भेद	१२१
७३	निक्षेपकी व्युत्पत्ति	१२२–१२४
७४	द्रव्यार्थिकनय और उसके भेदोंकी व्युत्पत्ति	१२४–१२६
७५	पर्यायार्थिकनय और उसके भेदोंकी व्युत्पत्ति	१२७-१२८
७६	नैगमादि सातों नयोंकी व्युत्पत्ति	१२८–१३०
७७	द्रव्यार्थिकनयके भेद	१३०
७८	निश्चय व व्यवहारनयकी व्युत्पत्ति	१३१

नं.	विषय	पृष्ठ नं.
७९	सद्भूत, असद्भूत और उपचरित असद्भूतनयकी व्युत्पत्ति	१३१-१३२
८०	सद्भूतव्यवहारनयका विषय	१३२
८१	असद्भूतव्यवहारनयका विषय	१३२-१३५
८२	उपचारकी प्रवृत्ति	१३५
८३	संबंधका खुलासा	,,
८४	अध्यात्मभाषासे नयोंका लक्षण	,,
८५	मूलनयके २ भेद और उनके लक्षण	१३६
८६	शुद्ध और अशुद्ध निश्चयनयके लक्षण	१३६-१३७
८७	व्यवहारनयके २ भेद और उनके लक्षण	१३७
८८	सद्भूतव्यवहारनयके २ भेद और उनके लक्षण	१३७-१३८
८९	असद्भूतव्यवहारनयके २ भेद और उनके लक्षण	१३८-१३९

यह ग्रंथ "श्री महावीर प्रिंटिंग प्रेस" नातेपुते में छपकर प्रसिद्ध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकशा नं. १

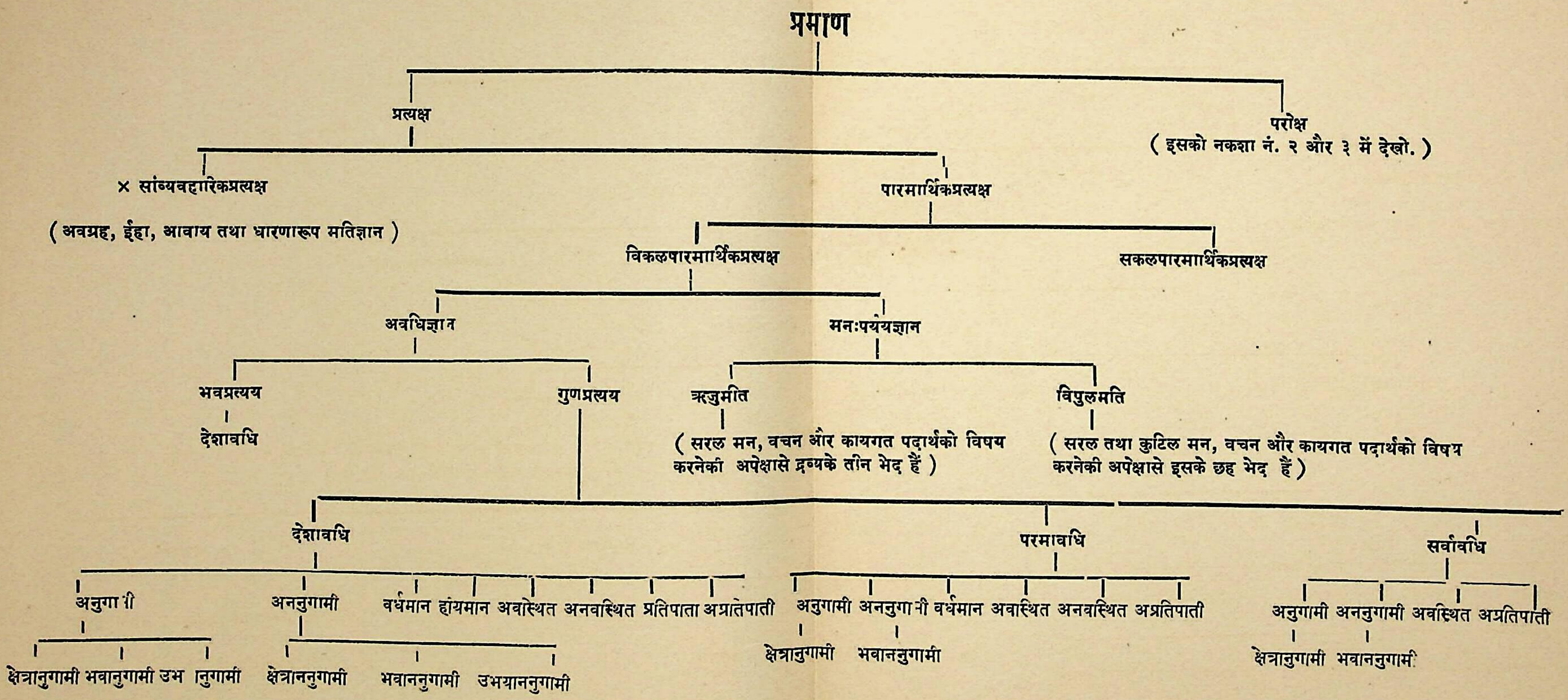

+ निर्विकल्प अवस्थामें स्वानुभूतिके समय होनेवाला स्वसंवेदनरूप भावश्रुतज्ञान भी प्रत्यक्ष मानागया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकशा नं. २

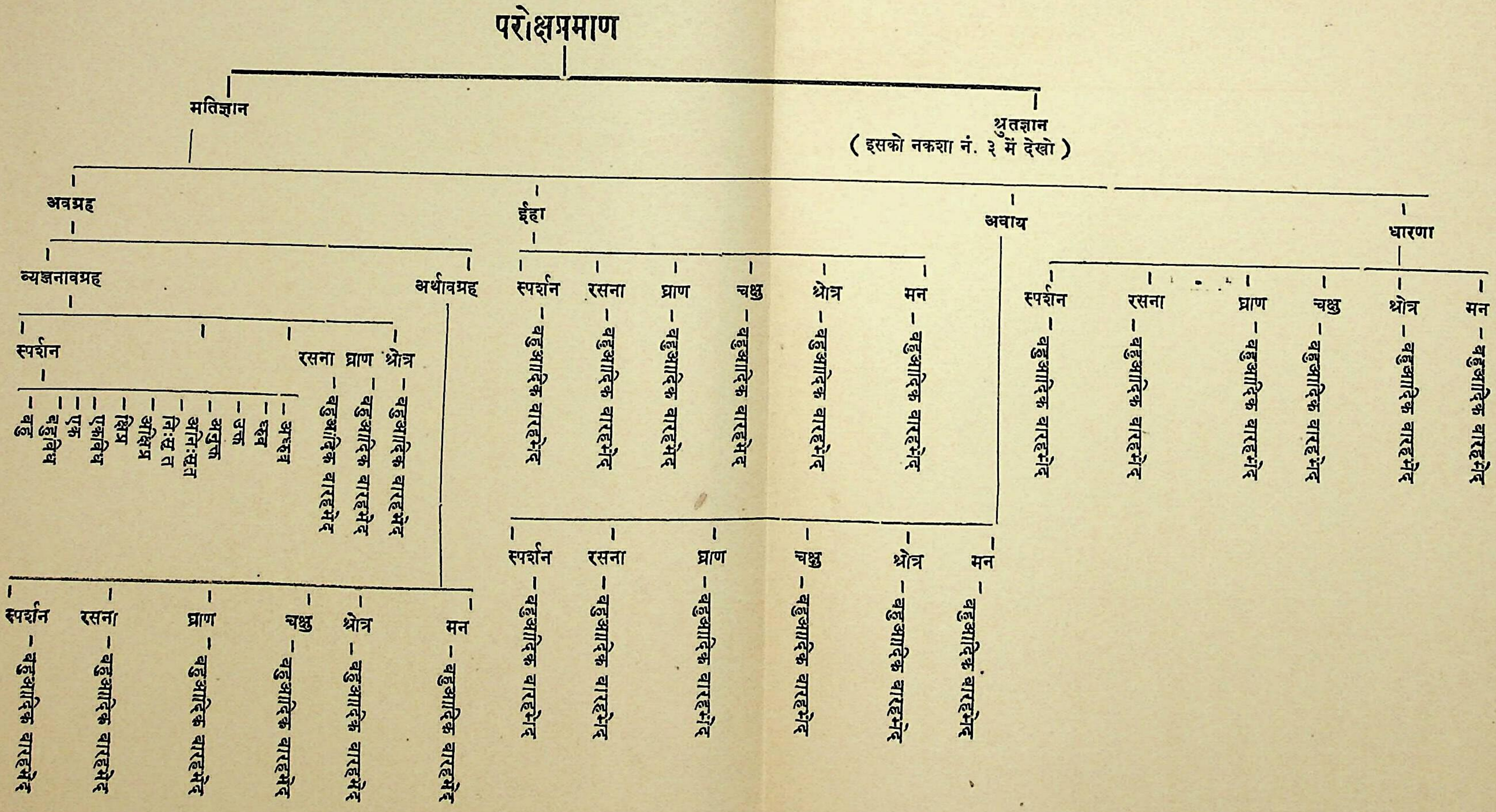

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नक्शा नं. ३

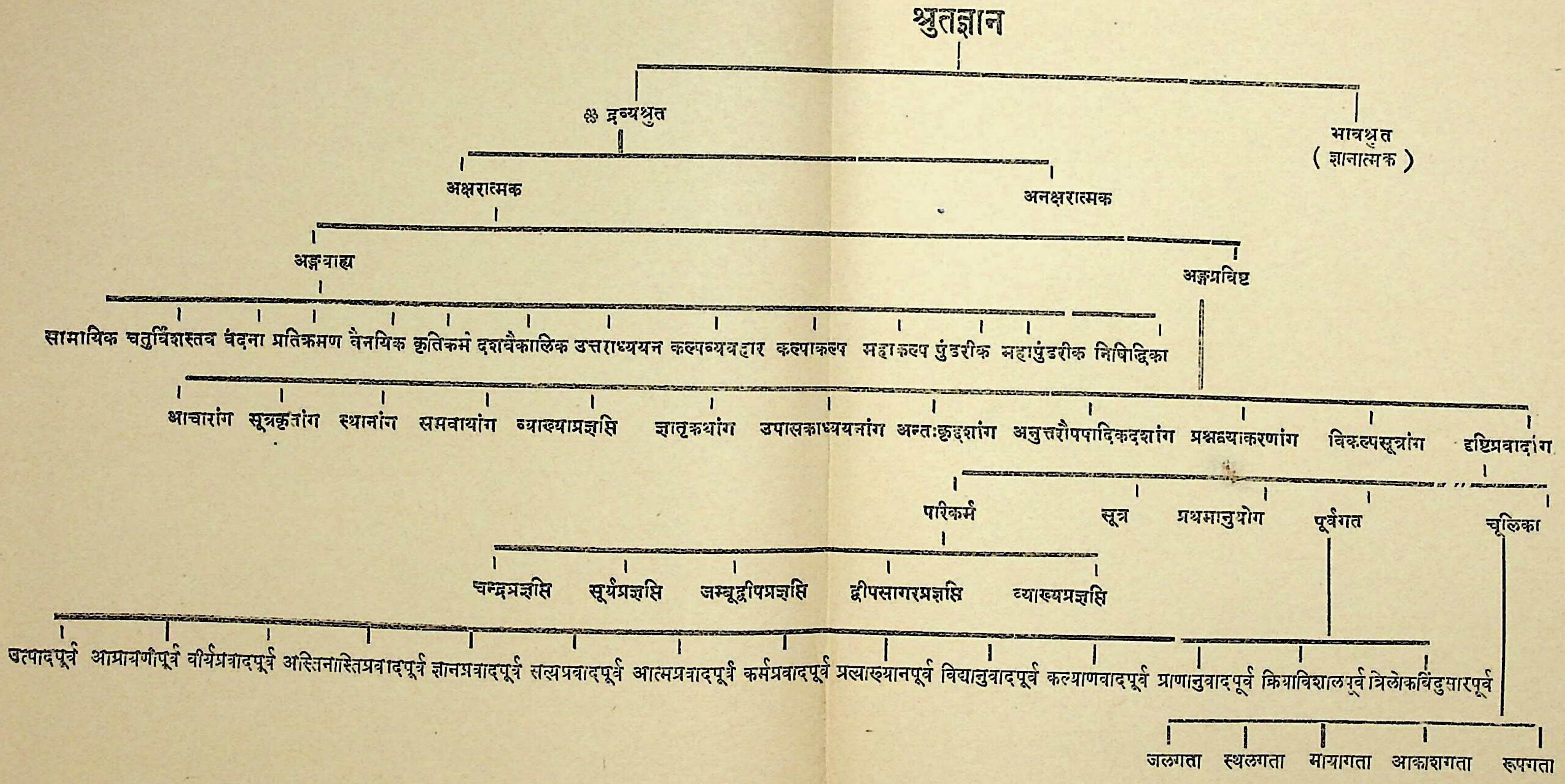

ॐ जिस समय अङ्गप्रविष्टादिक द्रव्यश्रुतके भेद ज्ञानात्मक पडते हैं उस समय भावश्रुत भी कहलाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकशा नं. ४

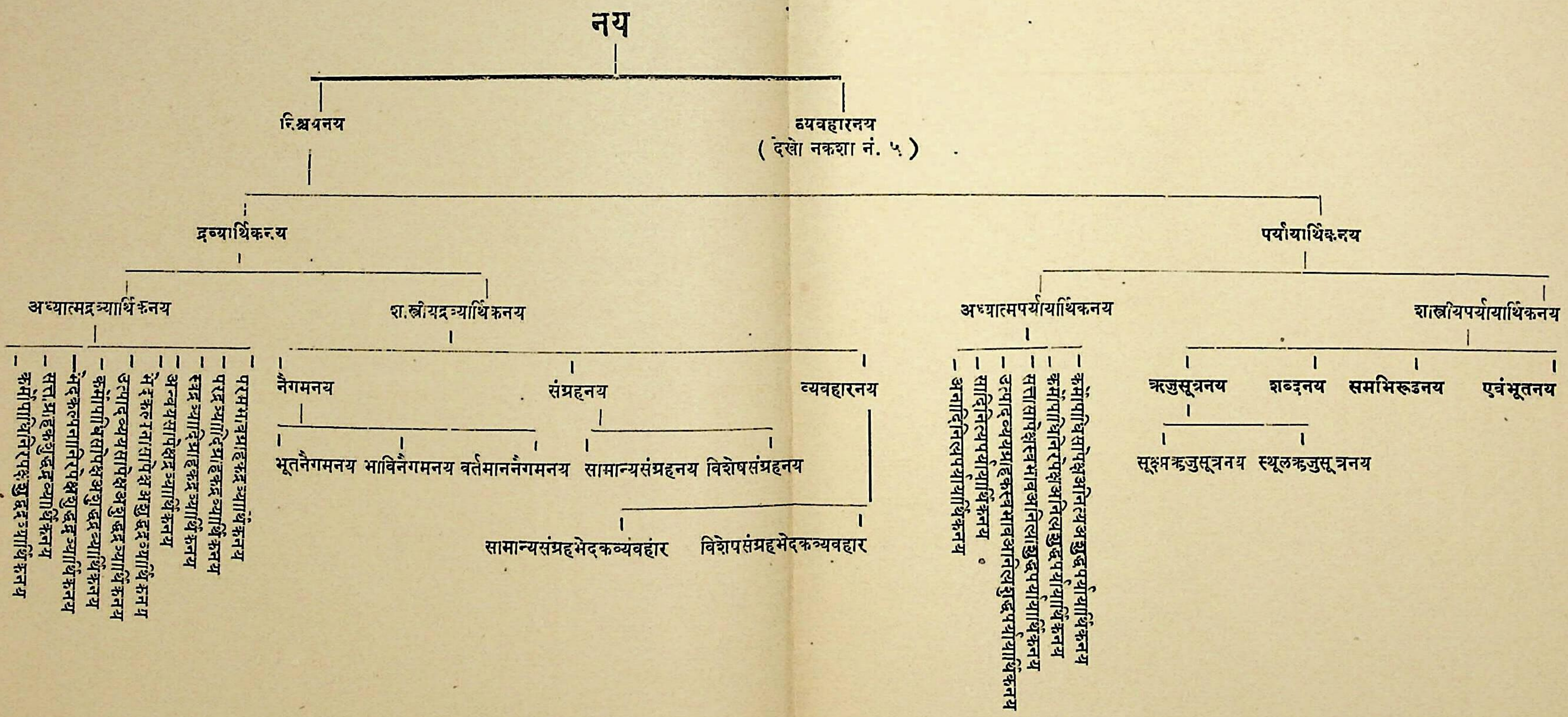

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकशा नं. ५

व्यवहारनय

- सद्भूतव्यवहारनय
  - शुद्धसद्भूतव्यवहारनय
  - अशुद्धसद्भूतव्यवहारनय
- असद्भूतव्यवहारनय
  - स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय
  - विजात्यसद्भूतव्यवहारनय
  - स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारनय
    - द्रव्यमें द्रव्यका आरोप
    - गुणमें गुणका आरोप
    - पर्यायमें पर्यायका आरोप
    - द्रव्यमें गुणका आरोप
    - द्रव्यमें पर्यायका आरोप
    - गुणमें द्रव्यका आरोप
    - गुणमें पर्यायका आरोप
    - पर्यायमें द्रव्यका आरोप
    - पर्यायमें गुणका आरोप
- उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय
  - स्वजात्युपचरितअसद्भूतव्यवहारनय
  - विजात्युपचरितअसद्भूतव्यवहारनय
  - स्वजातिविजात्युपचरितअसद्भूतव्यवहारनय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकशा नं. ६

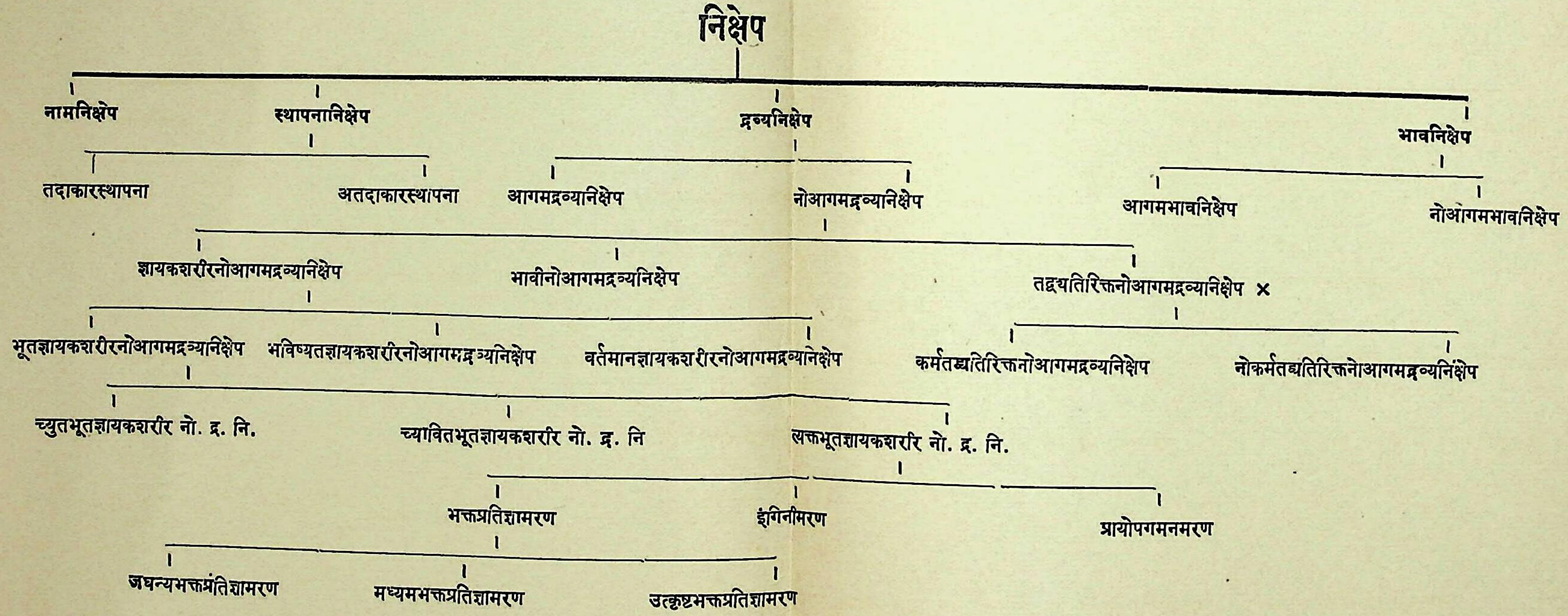

× जिस समय यह निक्षेप जीवद्रव्यमें लगाया जाता है उस समय इसके कर्म और नोकर्मरूपसे दो भेद होजाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

श्रीआचार्यदेवसेनविरचिता

आलापपद्धतिः प्रारभ्यते.

मंगलाचरणपूर्वक ग्रंथकारकी प्रतिज्ञा.

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।
पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं[1] जिनेश्वरम्[2] ।

अन्वयार्थ— (**वीरं जिनेश्वरं**) वीर जिनेश्वरको अर्थात् महावीर भगवानको अथवा २४ तीर्थंकरोंको (**नत्वा**) नमस्कार करके (**'अहं'**) मैं देवसेनाचार्य (**गुणानां**) गुणोंके (**च**) और (**तथैव**) उसी प्रकारसे ही अर्थात् गुणोंकी तरह ही (**स्वभावानां**) स्वभावोंके तथा (**पर्यायाणां**) पर्यायोंके भी (**विस्तरं**) विस्तारको (**विशेषेण**) विशेषरूपसे (**वक्ष्ये**) कहता हूं अर्थात् गुण, स्वभाव और पर्यायोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं ।

भावार्थ— ग्रंथकारने [3]मंगलाचरणपूर्वक द्रव्यसामान्यके वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा न करके जो गुण स्वभाव

---

१ वीर यह अंतिम तीर्थंकरका नाम है, अथवा वीर शब्दसे २४ तीर्थंकरोंका भी बोध होता है क्योंकि व और र अक्षर ४ और २ के संकेतरूप हैं । और 'अंकानां वामतो गतिः, इस न्यायसे वीर शब्दका अर्थ २४ होता है । इस अर्थ करनेमें स्वरोंकी गणना नहीं होती है । अथवा 'विशेषेण ईर्ते जानाति सकल पदार्थजातमिति वीरः सर्वज्ञः' जो संपूर्ण पदार्थोंको विशेषरूपसे जानता है उसे वीर कहते हैं । जिसका अर्थ सर्वज्ञ होता है जो संपूर्ण अर्हंत और सिद्धोंका बोध कराता है ।

२ जो कर्मरूपी शत्रुओंको जीते उसे जिन कहते हैं ।

३ मंगं पुण्यं सुखं तल्लाति आदत्ते गृह्णाति वा मंगलं । अथवा मलं पापं गालयति विध्वंसयतीति मंगलम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और पर्यायोंके स्वरूपके वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा की है उसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि गुण स्वभाव तथा पर्यायें द्रव्यसे भिन्न हैं और द्रव्य कोई इन गुणादिकोंसे भिन्न दूसरी ही वस्तु है। किन्तु गुण, स्वभाव व पर्यायोंका समुदाय ही द्रव्य है ऐसा अर्थ समझना चाहिये। क्योंकि संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजनके निमित्तसे यद्यपि अखण्ड

अर्थात् जो सुखको लावें अथवा पापोंको नष्ट करे उसे मंगल कहते हैं। और ग्रन्थकी आदिमें उस मंगल करनेके-पूर्वाचार्योंने १. नास्तिकताका परिहार २- शिष्टाचारका पालन ३- पुण्यकी प्राप्ति और ४- निर्विघ्न ग्रन्थकी परिसमाप्ति, इस प्रकार चार प्रयोजन (फल) बताये है। जैसा कि कहा भी है "नास्तिकत्वपरीहारः शिष्टाचारप्रपालनम्। पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नः शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः,, मंगलाचरणके ये सब प्रयोजन व्यवहारनयकी अपेक्षासे बताये गये हैं। वास्तवमें जिनेंद्र भगवानके असाधारण, पवित्र और पूज्य गुणोंकी प्राप्तिके लिये ही उनका स्मरण, चिंतवन, वन्दन तथा स्तवनादिरूप मंगलाचरण किया जाता है।

यहांपर मंगल यह शब्द उपलक्षण पद है। ["स्वावबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वं उपलक्षणत्वं ,, अर्थात् जो अपना बोधक होकरके अपनेसे इतर पदार्थोंका भी बोधक होवें उसे उपलक्षण कहते हैं। जैसे 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम् , इस वाक्यमें काक शब्द उपलक्षण है। इसलिए 'कौओंसे दहीकी रक्षा करो , इस वाक्यका ऐसा अर्थ नहीं होता है कि कौओंसे भिन्न कुत्ता, बिल्ली वगैरहसे दहीकी रक्षा मत करो अर्थात् उनको दही खाने दो। किंतु कौओंकी तरह और भी जितने कुत्ता बिल्ली वगैरह दहीको बिगाडनेवाले जानवर हैं उन सबसे दहीकी रक्षा करो ऐसा अर्थ होता है] इसलिए ग्रन्थके प्रारंभमें केवल मंगलाचरणका होनाही आवश्यक नहीं है। किंतु "मंगल णिमित्त हेउं परिमाणं णाम तहय कत्तारं। वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमायरिओ ,, ॥ इस गाथामें कहे हुए १- मंगलाचरण २- ग्रन्थ बनानेका निमित्त कारण ३- फल ४- प्रमाण ५- नाम और ६- कर्ता इन छह अधिकारोंका ग्रंथके प्रारम्भमें होना आवश्यक है, अर्थात् इन छह अधिकारोंपूर्वक ही ग्रन्थका प्रारम्भ करना चाहिये। जिसमें यहांपर मंगलाचरण, ग्रन्थ तथा कर्त्ताका नाम [क्योंकि कर्ताकी प्रामाणिकतासे ही उसके वचनोंमें प्रामाणिकता आती है, इसलिए ग्रन्थके प्रारम्भमें उसके बनानेवालेके नामका होना अत्यावश्यक है] तो स्पष्ट ही है। निमित्तकारण— साधारण बुद्धिवाले भव्य जीवही इस ग्रन्थकी रचनामें निमित्तकारण हैं। अर्थात् साधारण बुद्धिवाले भव्य जीवोंके लिये द्रव्यादिकके स्वरूपको सरलतासे समझानेके निमित्तसे ही यह ग्रन्थ बनाया गया है। फल— साक्षात् परंपराके भेदसे फलके दो भेद हैं। उनमेंसे कुज्ञानकी निवृत्ति, सम्यग्ज्ञानकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यमें भी गुण गुणी, स्वभाव स्वभावी तथा पर्याय पर्यायी आदि रूपसे भेदकल्पना की जाती है। तथापि द्रव्यके प्रदेशोंसे गुण, स्वभाव व पर्यायोंके भिन्न नहीं होनेसे गुण, स्वभाव तथा पर्यायें द्रव्यसे अभिन्नही हैं अर्थात् द्रव्य अपने गुणादिकसे भिन्न नहीं है और गुणादिक अपने आश्रयभूत द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं किन्तु दोनोंका परस्पर में तादात्म्यसम्बन्ध हैं। अतएव गुण, स्वभाव तथा पर्यायोंके विशेष कथनसे ही गुण, स्वभाव व पर्यायोंके अखण्डपिण्डात्मक सामान्य द्रव्यका कथन समझ लेना चाहिए। यदि गुणादिक, द्रव्यसे सर्वथा भिन्न माने जावेंगे तो जड, स्कन्ध, शाखा, पत्र, पुष्प तथा फलोंके अभावमें वृक्षके अभावकी तरह गुणोंके अभावमें द्रव्यका भी अभाव हो जायगा। तथा द्रव्यके अभावमें उसके आश्रित रहनेवाले गुणोंका भी अभाव हो जायगा। इस प्रकार सर्वथा भिन्न पक्षमें गुण तथा गुणी दोनों ही के अभावका प्रसंग आता है।

आलापपद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते।

अर्थ— वचनोंकी रचनाके क्रमके अनुसार नयचक्रके ऊपर अर्थात् नयचक्रनामक शास्त्रके आधारपरसे आलापपद्धतिको (मैं-देवसेनाचार्य) कहता हूं।

उत्पत्ति तथा कर्मोंकी निर्जराका होना तो ग्रन्थ बनानेका प्रत्यक्ष फल है। और स्वर्ग तथा मोक्षके सुखोंकी प्राप्तिका होना परंपरा फल है। अर्थात् जो कोई वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रोंको पढता है, उनके ऊपर श्रद्धान रखता है तथा श्रद्धानके अनुसारही उनका मनन चिन्तवन और आचरणादिक करता है वह उपर्युक्त प्रत्यक्ष फलोंके साथ साथ लौकिक तथा स्वर्ग व मोक्षसम्बन्धी सुखोंको प्राप्त होता है। प्रमाण— ग्रन्थ और अर्थके भेदसे प्रमाणके दो भेद हैं। उनमेंसे अर्थका प्रमाण तो अनन्त है। और ग्रंथकी संख्या २०५ श्लोक प्रमाण है। [यह संख्या हस्तलिखित प्रतिके आधारपरसे लिखी है]

१ आलापनाम शब्दोच्चारण अर्थात् बोलचालका तथा पद्धति—नाम, रीति या ढंगका हैं इसलिये बोलने चालनेकी पद्धति अर्थात् वचनरचनाके ढंगको ही आलापपद्धति कहते हैं। और वह नयचक्रके स्वरूपको सरलतासे समझानेके लिये ही प्रश्नोत्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न— साच किमर्थम् ?

अर्थ—वह आलाप पद्धति किसलिये है अर्थात् इस आलाप पद्धति ग्रन्थकी रचना किसलिये की गई है।

उत्तर— द्रव्यलक्षणसिद्ध्यर्थं स्वभावसिद्ध्यर्थं च।

अर्थ— द्रव्यके लक्षणकी सिद्धिके लिए और (पदार्थोंके) स्वभावकी सिद्धिके लिये।

भावार्थ— वक्ष्यमाण द्रव्यके लक्षण तथा स्वभावकी सिद्धिकेलिये ही इस ग्रन्थकी रचना कीगई है।

प्रश्न— द्रव्याणि कानि ?

अर्थ— द्रव्य कौन हैं ?

उत्तर— जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि।

अर्थ— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं।

भावार्थ— १— जिसमें चेतना पाई जावे उसे जीव कहते हैं। यह द्रव्यचेतन[1] अनेक, अस्तिकाय[2] असर्व-

---

रूपमें नयचक्रके ऊपरसे ही लिखी गई है।

१- यद्यपि जीवद्रव्य, चैतन्यत्व गुणकी अपेक्षासे चेतन ही माना गया है अचेतन नहीं, परंतु पंचेंद्रिय और मनके विषयोंके विकल्पसे रहित समाधिके समय स्वसंवेदन [आत्मज्ञान] रूप ज्ञानके विद्यमान रहते हुये भी बाह्य विषयरूप इंद्रियज्ञानके अभावकी अपेक्षासे आत्मा कथंचित् जड़ [अचेतन] भी माना गया है। २- जीवद्रव्य, अस्तित्व गुणके संबंधसे केवल अस्तिरूप तथा शरीरके समान बहुत प्रदेशोंको धारण करनेकी अपेक्षासे केवल कायरूप कहलाता है। इसलिये अस्तित्व निरपेक्ष केवल कायत्वसे अथवा कायत्व निरपेक्ष केवल अस्तित्वसे जीव, अस्तिकाय नहीं कहा जाता है, किन्तु दोनोंके मेलसे अर्थात् अस्तित्व, गुण तथा शरीरके समान बहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षासे अस्तिकाय कहलाता है। द्रव्यसंग्रहमें भी कहा है, संति जदो ते णेदे अत्थीति भणंति जिणवरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गत[१], अकार्यरूप[२], परिणामी[३], प्रवेशरहित[४], कर्त्ता,[५] सक्रिय,[६] कार्यरूप,[७] कारण व[८] अकारणरूप, अनित्य,[९]

जम्हा 'काया इव बहुदेसा तम्हा कायाय अत्थिकायाय॥ १- यद्यपि जीवद्रव्य लोकाकाशके बराबर असंख्यातप्रदेशी है इसलिये, समुद्घातके समय होनेवाली लोकपूरण अवस्थामें तथा संपूर्ण लोकमें व्याप्त नाना जीवोंकी अपेक्षासे जीव सर्वगत कहा जाता है तथापि लोकालोकरूप संपूर्ण आकाशमें व्याप्त नहीं होनेकी अपेक्षासे उसे असर्वगत कहते हैं। फिर भी व्यवहारनयसे केवलज्ञानावस्थामें ज्ञानकी अपेक्षासे [क्योंकि ज्ञानसे यह आत्मा लोकालोकवर्ती संपूर्ण पदार्थोंको जानता है] आत्माको लोक और अलोकमें भी व्यापक [सर्वगत] माना है। २- मुक्तजीव, द्रव्य तथा भावकर्मोंसे रहित होनेके कारण देव मनुष्यादि पर्यायरूप जीवके उत्पन्न होनेमें कारणभूत जो द्रव्य भावकर्मरूप अशुद्ध परिणति है उस अशुद्धपरिणतिके द्वारा संसारीजीवकी तरह किसी भी कालमें नरनारकादि पर्यायरूपसे उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए उस [मुक्तजीव] की अपेक्षासे जीवद्रव्य अकार्यरूप कहा जाता है। ३- स्वभाव तथा विभावपर्यायरूप परिणमनकी अपेक्षा। ४- यद्यपि व्यवहारनयसे संपूर्ण द्रव्य, एकक्षेत्रावगाही होनेके कारण एक दूसरेमें अर्थात् परस्परमें प्रवेश करके ही रहते हैं तथापि निश्चयनयसे चेतन अचेतन आदि अपने २ स्वरूपको नहीं छोडते हैं, इसलिये जीवादिक छहोंही द्रव्य प्रवेश रहित कहे जाते हैं। ५- यद्यपि शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे जीव, पुण्यपाप तथा घट पट आदि किसीका भी कर्त्ता नहीं है तथापि अशुद्ध निश्चयनयसे शुभ और अशुभ उपयोगसे युक्त होता हुआ पुण्यपापबन्धका कर्त्ता तथा उनके फलका भोक्ता कहा जाता है। ६- एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन करनेरूप अर्थात् हलनचलनरूप क्रियाकी अपेक्षा। ७- संसारीजीव, कारणभूत भावकर्मरूप आत्मपरिणामों की संततिकेद्वारा और द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामोंकी सन्ततिकेद्वारा नरनारकादि पर्यायरूपसे उत्पन्न होता है। इसलिए उस [संसारीजीव]की अपेक्षासे जीवद्रव्य कार्यरूप कहाजाता हैं। ८- संसारीजीव, कार्यभूत भावकर्मरूप आत्मपरिणामोंकी सन्ततिको और द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणामोंकी सन्ततिको उत्पन्न करता हुआ नरनारकादि पर्यायरूप कार्योंको उत्पन्न करता है, इसलिये उसकी अपेक्षासे जीवद्रव्य कारणरूप कहाजाता है। तथा मुक्तजीव दोनों प्रकारके कर्मोंसे रहित होनेके कारण नरनारकादि पर्यायरूप कार्योंको उत्पन्न नहीं करता है, अतः उसकी—मुक्तजीवकी अपेक्षासे जीवद्रव्य अकारणरूप कहाजाता है। अथवा जीवद्रव्य यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपसे परस्परमें एकदूसरेका उपकार करता है। तथापि पुद्गलादिक पांचों द्रव्योंके प्रति यह जीव कुछ भी उपकार नहीं करता है इसलिये अकारणरूप कहाजाता है। ९- यद्यपि जीवद्रव्य द्रव्यार्थिक नयसे नित्य है तथापि अगुरुलघुगुणके परिणमनरूप स्वभावपर्यायकी तथा विभावव्यंजन पर्यायकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अक्षेत्ररूप,[१२] लोकके बराबर[१३] असंख्यातप्रदेशी तथा अमूर्तिक[१४] है।

२ जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये चार गुण पाये जावें उसे पुद्गल कहते हैं। यह द्रव्य अचेतन[१], अनेक अस्तिकाय[२], परिणामी[३], असर्वगत[४], प्रवेशरहित[५], अकर्त्ता[६], सक्रिय,[७] संख्यात,[८] असंख्यात व अनंतप्रदेशी, अनित्य[९],

---

अपेक्षासे अनित्य कहाजाता है। १२- सम्पूर्ण द्रव्योंको अवकाशदान देनेकी सामर्थ्यके अभावकी अपेक्षासे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांचों ही द्रव्य अक्षेत्ररूप कहे जाते हैं। केवल एक आकाशद्रव्य ही क्षेत्ररूप है। क्योंकि वह ही सब द्रव्योंको अवकाश दान देता है। १३- यद्यपि जीवद्रव्य अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे शरीरनामकर्मके द्वारा पैदा होनेवाले संकोच तथा विस्तारके कारण अपने छोटे व बडे शरीरके प्रमाण कहा जाता है तथापि शुद्ध निश्चयनयसे लोकके बराबर असंख्यात प्रदेशी ही है। १४- यद्यपि जीवद्रव्य अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे मूर्तिक हैं तथापि शुद्ध निश्चयनयसे उसमें रूप, रस तथा गन्ध वगैरह कुछ भी नहीं पाये जाते हैं इसलिये वह अमूर्तिक ही है।

१- चैतन्यगुणके अभावकी अपेक्षा। २- अस्तित्व गुण तथा शरीरके समान बहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षा। ३- स्वभाव तथा विभाव पर्यायरूप परिणमनकी अपेक्षा। ४- यद्यपि पुद्गल लोकरूप महास्कन्धकी अपेक्षासे सर्वगत है तथापि महास्कन्धसे भिन्न शेष स्कन्धोंकी अपेक्षासे वह असर्वगत कहाजाता है। ५ इसका खुलासा जीवद्रव्यके विवेचनमें करदिया है, इसलिये वहांपर देखो। ६- यद्यपि पुद्गलादिक पांचों द्रव्योंमें अपने २ परिणामोंके द्वारा होनेवाला परिणमनरूप कर्तृत्व पाया जाता है, अर्थात् पुद्गलादिक पांचों ही द्रव्य अपने २ परिणमनके कर्ता हैं तथापि वे वास्तवमें पुण्यपापादिकके कर्त्ता न होनेसे अकर्त्ता ही हैं। ७- एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन करनेरूप अर्थात् हलचलनरूप क्रियाकी अपेक्षा। ८- यद्यपि पुद्गलपरमाणु वर्तमान पर्यायकी अपेक्षासे एक प्रदेशी है तथापि वह भूत और भविष्यत् पर्यायकी अपेक्षासे बहुप्रदेशी कहाजाता है, क्योंकि स्निग्ध व रूक्ष गुणके संबंधसे उसमें भी स्कन्धरूप होनेकी शक्ति है, इसलिये उसको-परमाणुको उपचारसे बहुप्रदेशी कहा है। ९- यद्यपि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे पुद्गलद्रव्य नित्य है तथापि अगुरुलघुगुणके परिणमनरूप स्वभावपर्यायकी तथा विभावव्यंजनपर्यायकी अपेक्षासे अनित्य कहाजाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अक्षेत्ररूप[१०] कारण व[११] कार्यरूप, मूर्तिक[१२] स्थूल[१३] तथा सूक्ष्म[१४] है।

३ – जो जीव और पुद्गलको गमन करनेमें सहकारी हो उसे धर्मद्रव्य कहते हैं।

भावार्थ— जैसे जल, गतिक्रियापरिणत मछलीको उदासीनरूपसे सहायता पहुंचाता है वैसे ही धर्मद्रव्य गतिक्रियापरिणत जीव तथा पुद्गलको उदासीनरूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योंकि जिसप्रकार जल ठहरी हुई मछलियों को जबरदस्तीसे गमन नहीं कराता है। किन्तु वे यदि स्वयं गमन करें तो जल उनके गमनमें उदासीनरूपसे सहकारी हो जाता है। उसीप्रकार धर्मद्रव्य ठहरे हुए जीव और पुद्गलको जबरन नहीं चलाता है। किंतु यदि वे स्वयं गमन करें तो धर्मद्रव्य उनके गमनमें उदासीनरूपसे सहकारी हो जाता है। यह द्रव्य अचेतन[१] एक[२] असर्वगत[३], अकार्यरूप[४], अस्तिकाय[५], अपरिणामी[६], प्रवेशरहित[७], अकर्त्ता[८], निष्क्रिय[९], कारणरूप,[१०] नित्य,[११] अक्षेत्र—

---

१०. इसका खुलासा जीवद्रव्यके विवेचनमें करदिया, है इसलिये वहांपर देखो। ११- परमाणु व स्कन्ध दोनोंहीकी अपेक्षासे पुद्गलद्रव्य कारण तथा कार्यरूप है। क्योंकि जिसप्रकार परमाणु द्व्यणुकादिक स्कन्धोंकी उत्पत्तिमें निमित्त है इसलिये कथंचित् कारणरूप तथा स्कन्धोंके भेद [खण्ड] होनेसे उत्पन्न होते हैं इसलिये कथंचित् कार्यरूप हैं, उसीप्रकार द्व्यणुकादिक स्कन्ध परमाणुओंके संघातसे उत्पन्न होते हैं इसलिये कथंचित् कार्यरूप तथा परमाणुओंकी उत्पत्तिमें निमित्त है इसलिये कथंचित् कारणरूप हैं। अथवा पुद्गलके परमाणुओंसे ही जीवके शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास आदि बनते हैं, इसलिये वह [पुद्गलद्रव्य] कारणरूप कहाजाता है। १२- स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णके पाये जानेकी अपेक्षा। १३- स्कन्धकी अपेक्षा। १४- परमाणुकी अपेक्षा।

१- चैतन्यगुणके अभावकी अपेक्षा। २- अखंडित होनेकी अपेक्षा। ३- यद्यपि धर्मद्रव्य लोकाकाशमें व्याप्त होनेकी अपेक्षासे सर्वगत कहाजाता है तथापि संपूर्ण आकाशमें व्याप्त नहीं होनेकी अपेक्षासे उसे असर्वगत कहते हैं। ४- किसी दूसरेके द्वारा उत्पन्न नहीं होनेकी अपेक्षा। ५- अस्तित्वगुण तथा शरीरके समान बहुप्रदेशी होनेकी अपेक्षा। ६ यद्यपि धर्मद्रव्य स्वभाव पर्यायरूप परिणमनकी अपेक्षासे परिणामी है तथापि विभावव्यञ्जन पर्यायरूप परिणमनके अभावकी मुख्यताकी अपेक्षासे वह अपरिणामी कहाजाता है। ७ इसका खुलासा जीव द्रव्यके विवेचनमें करदिया है इसलिये वहांपर देखो। ८ इस-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप[१], लोकके बराबर असंख्यातप्रदेशी तथा अमूर्तिक,[२] है।

४— जो जीव और पुद्गलको ठरनेमें सहकारी हो उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।

भावार्थ— जैसे पृथिवी, गतिपूर्वक स्थितिरूप क्रियासे परिणत पथिकोंको उदासीनरूपसे सहायता पहुंचाती है, वैसेही अधर्मद्रव्य गतिपूर्वक स्थितिरूप क्रियापरिणत (युक्त) जीव और पुद्गलको उदासीनरूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योंकि जिसप्रकार पृथिवी, गमनकरते हुये गाय, बैल, घोडा तथा पथिकोंको जबरदस्तीसे नहीं ठहराती है, किन्तु यदिवे स्वयं ठहरें तो पृथिवी उनके ठहरनेमें सहकारिणी हो जाती है; उसीप्रकार अधर्मद्रव्य गमनकरते हुए जीव और पुद्गलको जबरन नहीं ठहराता है, किन्तु यदिवे स्वयं ठहरें तो अधर्मद्रव्य उनके ठहरनेमें सहकारी हो जाता है।

यहद्रव्य अचेतन,[३] एक,[४] असर्वगत,[५] अकार्यरूप,[६] अस्तिकाय,[७] अपरिणामी,[८] प्रवेशरहित,[९] अकर्त्ता,[१०] निष्क्रिय,[११] नित्य[१२] अक्षेत्ररूप,[१३] लोकाकाशके बराबर असंख्यातप्रदेशी. अमूर्तिक,[१४] और कारणरूप,[१५] है।

का खुलासा पुद्गलद्रव्यके विवेचनमें करदिया है इसलिये वहांपर देखो। ९- एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें गमन करनरूप क्रियाके अभावकी अपेक्षा। १०- गतिक्रियापरिणत जीव और पुद्गलके गतिरूपी कार्यमें उदासीनरूपसे सहायक होनेकी अपेक्षा। ११- यद्यपि धर्मद्रव्य अर्थपर्यायकी अपेक्षासे अनित्य है, तथापि व्यंजनपर्यायके अभावकी मुख्यतासे अथवा अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होनेकी अपेक्षासे नित्य कहाजाता है। १-.इसका खुलासा जीवद्रव्यके विवेचनमें करदिया है इसलिये वहांपर देखो। २- स्पर्श, रस तथा गन्ध वगैरह पौद्गलिक गुणोंके नहीं पाये जानेकी अपेक्षा।

३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४—धर्मद्रव्यमें जिस अपेक्षासे इन बिशेषणोंका सद्भाव बताया गया है उसी अपेक्षासे ही अधर्मद्रव्यमें इन विशेषणोंका सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहांपर धर्मद्रव्य न लगाकर अधर्मद्रव्य लगाना चाहिये। १५- स्थितिरूप क्रियासे युक्त जीव और पुद्गलके स्थितिरूपी कार्यमें उदासीनरूपसे सहायक होनेकी अपेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५- जो जीवादिक छहों द्रव्योंको ठहरनेके लिये युगपत् स्थान देवे उसे आकाश कहते हैं।

यह द्रव्य अचेतन,[१] एक,[२] अकार्यरूप,[३] अपरिणामी,[४] अस्तिकाय,[५] प्रवेशरहित,[६] अकर्त्ता,[७] निष्क्रिय,[८] नित्य,[९] अमूर्तिक,[१०] अनन्तप्रदेशी, कारणरूप,[११] सर्वगत,[१२] तथा क्षेत्ररूप, [१३] है।

६ जो जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें निमित्त कारणहो उसे काल कहते हैं।

भावार्थ— जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें उस चाकके नीचेकी कीली उदासीनरूपसे सहायता पहुंचाती है वैसे ही जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें कालद्रव्य उदासीनरूपसे सहायता पहुंचाता है। क्योंकि जिसप्रकार कीली ठहरे हुए चाकको जबरदस्ती भ्रमण नहीं कराती है, किन्तु यदि वह चाक भ्रमण करे तो उसके भ्रमणमें कीली निमित्तकारण होजाती है। उसीप्रकार कालद्रव्य जीवादिक द्रव्योंके परिणमनको जबरन नहीं कराता है। किन्तु अपनी २ उपादान शक्तिसे युक्त होकर स्वयं परिणमन करनेवाले जीवादिक द्रव्योंके परिणमनमें कालद्रव्य केवल निमित्तकारण होजाता है।

१-२-६-४-५-६-७-८-९-१०— धर्मद्रव्यमें जिस अपेक्षासे इन विशेषणोंका सद्भाव बताया गया है उसी अपेक्षासे ही आकाश द्रव्यमें इन विशेषणोंका सद्भाव समझना चाहिये; परन्तु यहांपर धर्मद्रव्य न लगाकर आकाशद्रव्य लगाना चाहिये। ११- संपूर्ण द्रव्योंको युगपत् अवकाशदान देनेरूप कार्यकी अपेक्षासे अर्थात् आकाशद्रव्य जीवादिक द्रव्योंके अवगाहरूप कार्यको करता है, इस लिये वह कारणरूप कहाजाता है। १२- लोक और अलोकमें व्याप्त होनेकी अपेक्षा। १३- संपूर्ण द्रव्योंके अवकाशदान देनेकी सामर्थ्यकी अपेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह द्रव्य अचेतन,[1] अनेक, अकार्यरूप,[2] अपरिणामी,[3] प्रवेशरहित,[4] अकर्ता,[5] निष्क्रिय,[6] नित्य,[7] अक्षेत्ररूप,[8] अमूर्तिक,[9] अनास्तिकाय,[10] एकप्रदेशी,[11] कारणरूप[12] और असर्वगत[13] है।

द्रव्यका लक्षण।

सद्द्रव्यलक्षणम्।

अर्थ— द्रव्यका लक्षण सत् है।

भावार्थ— जैनसिद्धांतमें "सद्द्रव्यलक्षणं" और गुणपर्ययवद्द्रव्यं" इस प्रकार द्रव्यके दो लक्षण माने हैं, परन्तु इन दोनों ही लक्षणोंमें परस्पर कुछ विरोध तथा अर्थभेद नहीं है। क्योंकि कथंचित् नित्यानित्यत्वके भेदसे सत् दो प्रकारका कहाजाता है। (ध्रौव्यकी अपेक्षासे सत् नित्य कहाजाता है, तथा उत्पाद-व्ययकी अपेक्षासे अनित्य कहाजाता है) उनमेंसे नित्यात्मक अंशसे गुणका और अनित्यात्मक अंशसे पर्यायका ग्रहण होता है। कारण कि गुणोंमें कथंचित् नित्यत्वकी और पर्यायोंमें अनित्यत्वकी मुख्यता है इसलिए जिसप्रकार 'सद्द्रव्यलक्षणं' इस द्रव्यके लक्षणसे द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक सिद्ध होता है, उसीप्रकार ' गुणपर्ययवद्द्रव्यं , इस द्रव्यके लक्षणसे भी

१-२-३-४-५-६-७-८-९— धर्मद्रव्यमें जिस अपेक्षासे इन विशेषणोंका सद्भाव बताया गया है, उसी अपेक्षासे कालद्रव्यमें भी इन विशेषणोंका सद्भाव समझना चाहिये। परन्तु यहांपर धर्मद्रव्य न लगाकर कालद्रव्य लगाना चाहिये। १०- बहुप्रदेशी नहीं होनेकी अपेक्षा। ११- द्वितीयादिक प्रदेशोंके न होनेसे कालद्रव्यको अप्रदेशी भी कहते हैं। १२- कालद्रव्य जीवादिक द्रव्योंके वर्तनारूप कार्यको करता है, इसलिए वह कारणरूप कहाजाता है। १३- यद्यपि कालद्रव्य लोकके प्रदेशोंके बराबर नाना कालाणुओंकी अपेक्षासे सर्वगत कहाजाता है तथापि एक एक कालाणुकी अपेक्षासे उसे असर्वगत कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य कथंचित् नित्यानित्यात्मक सिद्ध होता है। अथवा गुणकी और नित्यत्व (ध्रौव्य) की परस्परमें व्याप्ति है। तथा पर्यायकी और अनित्यत्व (उत्पादव्यय) की परस्परमें व्याप्ति है, इसलिए 'द्रव्य गुणवान् है, ऐसा कहनेसे ही 'द्रव्य ध्रौव्यवान् है, ऐसा अथवा 'द्रव्य ध्रौव्यवान् है, ऐसा कहनेसे ही द्रव्य गुणवान् है ऐसा सिद्ध होजाता है। और "द्रव्य पर्यायवान् है,, ऐसा कहनेसे ही द्रव्य उत्पादव्ययुक्त है,, ऐसा अथवा "द्रव्य उत्पादव्ययुक्त है,, ऐसा कहनेसे ही द्रव्य पर्यायवान् है,, ऐसा सिद्ध होजाता है अर्थात् "सद्द्रव्यलक्षणं,, इस द्रव्यके लक्षणमें 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं, यह और 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं, इसमें 'सद्द्रव्यलक्षणं,, यह द्रव्यका लक्षण गर्भित होजाता है। क्योंकि उपर्युक्त कथनानुसार द्रव्यके दोनों ही लक्षणवाक्योंका एक अर्थ है।

इस तरह द्रव्यके दोनों लक्षणोंमें परस्पर अविनाभाव होनेसे कुछ भी विरोध तथा अर्थभेद नहीं है। केवल विवक्षावश दो कहे गये हैं; अर्थात् अभेदविवक्षासे 'सत्, द्रव्यका लक्षण कहा गया है और लक्ष्यलक्षणरूप भेदविवक्षासे 'गुणपर्ययवान्, द्रव्यका लक्षण कहागया है।

सत्का लक्षण।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।

अर्थ— जो उत्पाद,[1] व्यय[2] और ध्रौव्यसे[3] युक्त हो उसे सत् कहते हैं।

---

१ द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं।

२ द्रव्यकी पूर्वपर्यायके नाशको व्यय कहते हैं।

३. पूर्व और उत्तर पर्यायमें रहनेवाली प्रत्यभिज्ञानकी कारणभूत द्रव्यकी नित्यताको ध्रौव्य कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि दण्डसे युक्त देवदत्त इत्यादि भेदअर्थमें ही युक्त शब्द आता है तथापि यहांपर रूपादिक युक्त घट, हस्तादिक युक्त शरीर तथा सारयुक्त स्तंभकी तरह कथंचित् अभेद अर्थमें ही युक्त शब्दको ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि उत्पादादिक त्रयात्मक ही सत् है अर्थात् सत्से उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य भिन्न नहीं हैं। तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे सत् भिन्न नहीं है, किन्तु उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य ये तीनों ही सद्रूप हैं। इसलिए इन तीनोंको ही एक आलापसे (शब्दसे) सत् कहते हैं। और ये उत्पादादिक तीनों ही पर्यायोंमें होते हैं द्रव्यमें नहीं, किन्तु पर्यायें द्रव्यसे कथंचित् अभिन्न हैं इसलिए द्रव्यमें उत्पादादिक होते हैं ऐसा कहाजाता है।

यहांपर इतना और समझलेना चाहिये कि, उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य इन तीनोंके होनेका एक ही समय है। भिन्न २ नहीं। जैसे— जो समय मनुष्यपर्यायकी उत्पत्तिका है वही समय देवपर्यायके नाश तथा देव व मनुष्य दोनों ही पर्यायोंमें जीवद्रव्यके पायेजानेरूप ध्रौव्यका है। अथवा जो समय घटपर्यायकी उत्पत्तिका है, वही समय पिण्डपर्यायके नाश तथा घट व पिंड दोनों ही पर्यायोंमें मृत्तिकात्व सामान्यधर्मके पाये जानेरूप ध्रौव्यका है।

इति द्रव्याधिकारः।

अर्थ— इसप्रकार द्रव्यके स्वरूपको बतानेवाला द्रव्यका अधिकार समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न — लक्षणानि[1] कानि ?

अर्थ— गुण[2] कौन है ?

उत्तर— अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं प्रदेशवत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः[3] ।

अर्थ— आस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये द्रव्योंके दश सामान्य[4] गुण हैं ।

भावार्थ— १- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यका कभी अभाव न हो उसको अस्तित्व गुण कहते हैं ।

२- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रियाकारित्व (अर्थक्रियाकारीपना) पाया जावे उसको वस्तुत्व

---

१ यहांपर लक्षण शब्दसे गुणका ग्रहण किया गया है क्योंकि लक्षण, शक्ति, धर्म, स्वभाव, गुण और विशेष आदि ये सब शब्द एक गुणरूप अर्थके ही वाचक हैं--अर्थात् गुणके नाम हैं । पंचाध्यायीमें भी कहा है—

शक्तिर्लक्ष्म विशेषो धर्मो रूपं गुणः स्वभावश्च । प्रकृतिः शीलं चाकृतिरेकार्थवाचका अमी शब्दाः ॥ ४८ ॥

२- दव्वाणं सहभूदा सामण्णविसेसदो गुणा णेया । सव्वेसिं सामण्णा दहभणिया सोलस विसेसा ॥

अर्थ-- जो सदैव द्रव्यके साथ रहें अर्थात् जो सहभावी हों उन्हें गुण कहते हैं, और उन गुणोंके सामान्य तथा विशेष इस तरह दो भेद हैं । उनमेंसे सामान्यगुण दश प्रकारके तथा विशेष गुण सोलह प्रकारके होते हैं ।

३- सामान्यगुणोंके नाम-- अत्थित्तं वत्थुत्तं दव्वत्त पमेयत्त अगुरुलहुगुत्तं । देसत्त चेदणिदरं मुत्तममुत्तं वियाणेह ॥

(अर्थ ऊपर लिखा गया है)

४- जो गुण सब द्रव्योंमें साधारणरूपसे पाये जाते हैं उन्हें सामान्यगुण कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण कहते है । जैसे घडेमें जलानयनधारणादिक अर्थक्रिया हैं ।

३- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें एक परिणामसे दूसरे परिणामरूप परिणमन हो अर्थात् द्रव्य सदैव परिणमनशील रहे उसको द्रव्यत्व गुण कहते हैं ।

४- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्य प्रमाणके विषयपनेको प्राप्त हो अर्थात् किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं ।

५- जिस गुणके निमित्तसे एक द्रव्य अन्य द्रव्यरूप तथा एक गुण दूसरे गुणरूप परिणमन नहीं करे उसको अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं ।

६- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें आकार विशेषहो उसको प्रदेशवत्वगुण कहते हैं ।

७- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें पदार्थोंका प्रतिभासकत्व अर्थात् उनके (पदार्थोंके) जानने देखनेकी शक्ति हो उसको चेतनत्व गुण कहते हैं ।

८- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें पदार्थोंका अप्रतिभासकत्व अर्थात् उनके जानने देखनेकी शक्ति न हो उसको अचेतनत्व गुण कहते हैं ।

९- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें स्पर्शादिक पाये जावें अथवा जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यको इंद्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेकी योग्यता हो उसको मूर्तत्व गुण कहते हैं ।

१०- जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यमें स्पर्शादिक नहीं पाये जावें अथवा जिस गुणके निमित्तसे द्रव्यको इंद्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेकी योग्यता न हो उसको अमूर्तत्व गुण कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक द्रव्यमें पाये जानेवाले सामान्य गुणोंकी संख्या ।

प्रत्येकमष्टावष्टौ सर्वेषां ।

अर्थ— प्रत्येक द्रव्यमें दश प्रकारके सामान्यगुणोंमेंसे आठ आठ सामान्यगुण पाये जाते हैं ।

पूर्वोक्त कथनका खुलासा ।

एकैकद्रव्ये अष्टौ अष्टौ गुणा भवन्ति ।

अर्थ— एक एक द्रव्यमें आठ आठ सामान्यगुण होते हैं ।

सामान्यगुणोंमेंसे जिस २ द्रव्यमें जो २ गुण नहीं पाये जाते हैं उनके नाम—

जीवद्रव्ये अचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति ।

अर्थ— जीवद्रव्यमें अचेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं पाये जाते हैं ।

भावार्थ-- जीवद्रव्यमें अचेतनत्व व मूर्तत्व इन दो गुणोंको छोडकर वाकीके अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण पाये जाते हैं ।

पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वं अमूर्तत्वं च नास्ति ।

अर्थ— पुद्गल द्रव्यमें चेतनत्व तथा अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं पाये जाते हैं ।

भावार्थ--- पुद्गलद्रव्यमें चेतनत्व तथा अमूर्तत्व इन दो गुणोंको छोडकर वाकीके अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये आठ गुण पाये जाते हैं ।

धर्माधर्माकाशकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्योंमेंसे प्रत्येक द्रव्यमें चेतनत्व तथा मूर्तत्व ये दो गुण नहीं पाये जाते हैं।

भावार्थ– धर्मादिक चारों द्रव्योंमेंसे प्रत्येक द्रव्यमें चेतनत्व व मूर्तत्व इन दो गुणोंको छोडकर बाकीके अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व, अचेतनत्व, और अमूर्तत्व ये आठ २ गुण पाये जाते हैं

एवं द्विद्विगुणवर्जिते अष्टौ अष्टौ सामान्यगुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवन्ति।

अर्थ--- इसप्रकार दो दो गुणोंको छोडकरके बाकीके आठ २ सामान्य गुण प्रत्येक द्रव्यमें होते हैं-पाये जाते हैं।

विशेषगुणोंके नाम

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि स्पर्शरसगन्धवर्णा गतिहेतुत्वं स्थितिहेतुत्वमवगाहनहेतुत्वं वर्तनाहेतुत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः[1]।

अर्थ-- ज्ञान,[2] दर्शन, सुख,[3] वीर्य,[4] स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व,

---

१- विशेष गुणोंके नाम– णाणं दंसणसुहसत्तिरूवरसगंधफासगमणठिदी। वट्टणगाहणहेउं मुत्तममुत्तं खु चेदणिदरं च॥ (अर्थ ऊपर लिखा गया है)

२- अट्ठचदुणाणदंसणभेया सत्तिसुहस्स इह दो दो। वण्णरसपंचगंधा दो फासा अट्ठ णायव्वा॥

अर्थ-- उन सोलह प्रकारके विशेष गुणोंमेंसे ज्ञानके आठ, दर्शनके चार, वीर्य (शक्ति) के दो, सुखके दो, वर्णके पांच, रसके पांच, गंधके दो और स्पर्शके आठ भेद होते हैं। ३- इन्द्रियजमतीन्द्रियं चेति सुखस्य द्वौ भेदौ। अर्थ--- इन्द्रियजन्य और अतींद्रिय इस तरह सुखके दो भेद हैं। ४- क्षायोपशमिकी शक्तिः क्षायिकी चेति शक्तेर्द्वौ भेदौ। अर्थ-- आत्माकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व इसप्रकार द्रव्योंके सोलह विशेषगुण[१] होते हैं।

जीव और पुद्गलमें पायेजानेवाले विशेषगुणोंकी संख्या।

षोडसविशेषगुणेषु जीवपुद्गलयोः षडिति।

अर्थ— सोलह प्रकारके विशेष गुणोंमेंसे जीव और पुद्गल द्रव्यमें छह छह विशेषगुण पाये जाते हैं।

जीवके विशेष गुणोंके नाम।

जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्वमिति षट्।

अर्थ— जीव द्रव्यमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व, और अमूर्तत्व ये छह विशेष गुण पाये जाते हैं।

पुद्गलके विशेष गुणोंके नाम।

पुद्गलस्य स्पर्शरसगन्धवर्णाः मूर्तत्वमचेतनत्वमिति षट्।

अर्थ— पुद्गल द्रव्यमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, मूर्तत्व, और अचेतनत्व ये छह विशेष गुण पाये जाते हैं।

धर्मादिक चार द्रव्योंमें पाये जानेवाले विशेष गुणोंकी संख्या।

इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः

अर्थ— धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्योंमेंसे प्रत्येक द्रव्यमें तीन २ विशेष गुण पाये जाते हैं।

शक्तिको वीर्य कहते हैं। और क्षायोपशमिकी तथा क्षायिकी इसतरह उस शक्तिके दो भेद हैं।

१ जो गुण सब द्रव्योंमें नहीं पाये जावें अथवा जिनके द्वारा द्रव्य विशेषकी सिद्धि कीजावे उनको विशेषगुण कहते हैं यथा– द्रव्यविशेषस्तु साध्यते लितरैः। पंचाध्यायी १६२ श्लोक.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मद्रव्यके विशेष गुणोंके नाम ।

धर्मद्रव्ये गतिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमेते त्रयो गुणाः ।

अर्थ— धर्म द्रव्यमें गतिहेतुत्व, अमूर्तत्व, और अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

अधर्मद्रव्यके विशेष गुणोंके नाम ।

अधर्मद्रव्ये स्थितिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति ।

अर्थ-- अधर्मद्रव्यमें स्थितिहेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

आकाशद्रव्यके विशेष गुणोंके नाम ।

आकाशद्रव्ये अवगाहनहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति ।

अर्थ-- आकाशद्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

कालद्रव्यके विशेष गुणोंके नाम ।

कालद्रव्ये वर्त्तनाहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति विशेषगुणाः ।

अर्थ-- कालद्रव्यमें वर्तनाहेतुत्व, अमूर्तत्व तथा अचेतनत्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं ।

आगे चेतनत्वादिक चार गुणोंका सामान्य तथा विशेष दोनोंही प्रकारके गुणोंमें पाठ होनेसे पुनरुक्ति दोष आता है, इसलिए उस (पुनरुक्ति दोष) का परिहार करते हैं ।

अन्तस्थाश्चत्वारो[1] गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यगुणाः विजात्यपेक्षया त एव विशेषगुणाः ।

१- चेदणमचेदणा तह मुत्तममुत्तावि चरिम जे भणिया । सामण्ण सजाईणं तेवि विसेसा विजाईणं ॥
(अर्थ ऊपर लिखा गया है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ-- अन्तके चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये चार गुण स्वजातिकी अपेक्षासे सामान्यगुण तथा विजातिकी अपेक्षासे विशेष गुण कहे जाते हैं।

भावार्थ--- १ जीव अनंतानंत हैं इसलिए चेतनत्वगुण सामान्यरूपसे सब जीवोंमें पाये जानेके कारण वह जीवका सामान्य गुण कहा जाता है। और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पांच द्रव्योंमें नहीं पाये जानेके कारण वही (चेतनत्वगुण) जीवका विशेष गुण कहाजाता है।

२- अचेतनत्व गुण सामान्यरूपसे पुद्गलादिक पांचोंही द्रव्योंमें पाया जाता है, इसलिए वह उन (पुद्गलादि पांचों द्रव्यों) का सामान्य गुण कहाजाता है। और जीवमें नहीं पाया जाता है इसलिए वही (अचेतनत्वगुण) उनका--पुद्गलादिकका विशेष गुण कहाजाता है।

३- पुद्गल अनंतानंत हैं इसलिए मूर्तत्वगुण सामान्यरूपसे संपूर्ण पुद्गलोंमें पाये जानेके कारण वह पुद्गल द्रव्यका सामान्य गुण कहाजाता है। और जीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पांच द्रव्योंमें नहीं पाये जानेके कारण वही (मूर्तत्वगुण) पुद्गलद्रव्यका विशेष गुण कहाजाता है।

४- अमूर्तत्व गुण सामान्यरूपसे जीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पांचोंही द्रव्योंमें पाया जाता है इसलिए वह उन (पुद्गल विना पांचों द्रव्यों) का सामान्य गुण कहाजाता है, और पुद्गलमें नहीं पाया जाता है इसलिए वही (अमूर्तत्व गुण) उनका विशेष गुण कहाजाता है।

इसप्रकार उपर्युक्त चेतनत्वादिक चारों ही गुण भिन्न भिन्न अपेक्षा (स्वजाति तथा विजाति की अपेक्षा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से सामान्य और विशेष गुण कहे जाते हैं। इसलिए उन (चेतनत्वादिक गुणों) का सामान्य तथा विशेष दोनों ही प्रकारके गुणोंमें पाठ होने पर पुनरुक्ति दोष नहीं आता है।

इति गुणाधिकारः ।

अर्थ— इस प्रकार गुणके स्वरूपादिकको बतानेवाला गुणका अधिकार समाप्त हुआ।

पर्यायका लक्षण और उसके भेद।

गुणविकाराः पर्यायास्ते द्वेधा स्वभावविभावपर्यायभेदात्

अर्थ— गुणोंके विकार (परिणमन) को पर्याय कहते हैं और स्वभाव[1] तथा विभाव[2] पर्यायके भेदसे वे पर्यायें दो प्रकारकी होती हैं।

१- दूसरे निमित्तके विना जो पर्याय होती है उसको स्वभावपर्याय कहते हैं, और यह संपूर्ण द्रव्योंमें पाई जाती है।

२- दूसरे निमित्तसे जो पर्याय होती है उसको विभावपर्याय कहते हैं, और यह जीव तथा पुद्गलमें ही पाई जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव पर्यायका लक्षण ।

अगुरुलघुविकाराः स्वभावपर्यायास्ते द्वादशधा षड् वृद्धिरूपाः षड्हानिरूपाः ।

अर्थ— अगुरुलघु[1] गुणोंके विकारको स्वभावपर्याय कहते हैं । वे पर्यायें छह वृद्धिरूप तथा छह हानिरूप इसतरह बारह प्रकारकी होती हैं ।

स्वभावपर्यायके बारह भेद ।

अनन्तभागवृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागवृद्धिः, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यातगुणवद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः, एवं षड् वृद्धिरूपास्तथा अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः, संख्यात गुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनन्तगुणहानिः, एवं षड् हानिरूपाः ज्ञेयाः ।

अर्थ— अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि इस प्रकार छह वृद्धिरूप तथा अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि. संख्यातभागहानि, संख्यात गुणहानि, असंख्यातगुणहानि और अनन्तगुणहानि इस प्रकार छह हानिरूप स्वभावपर्यायें जानना चाहिये ।

भावार्थ-- अनन्तभागवृद्धि आदि छह वृद्धिरूप और अनन्तभागहानि आदि छह हानिरूप इस तरह स्वभावपर्यायोंके बारह भेद होते हैं । यहांपर अनंतका प्रमाण संपूर्ण जीवराशिके बराबर, असंख्यातका प्रमाण असंख्यातलोक और संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यातके बराबर समझना चाहिये ।

१- प्रत्येक द्रव्यमें अनंत अगुरुलघु गुण होते हैं, जो आगमप्रमाणसे जाने जासकते हैं । उन अगुरुलघु गुणोंके द्वारा प्रत्येक द्रव्यमें स्वभापर्यायें होती हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवकी विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय ।

विभावद्रव्यव्यंजनपर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्याया अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः ।

अर्थ– चार प्रकारकी नरनारकादि पर्यायें अथवा चौरासी[1] लाख योनियां ये सब जीवकी विभाव[2] द्रव्य व्यंजनपर्यायें हैं ।

भावार्थ–नरनारकादि पर्यायोंको अथवा चौरासी लाख योनियोंको जीवकी विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय कहते हैं ।

जीवकी विभावगुणव्यंजनपर्याय ।

विभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः मत्यादयः ।

अर्थ–- मतिज्ञानादिक और रागद्वेषादिक ये सब जीवकी विभावगुण[3] व्यंजनपर्यायें[4] हैं ।

१- णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदस वियलिंदियेसु छच्चेव । सुरणिरयतिरियचउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा ॥

अर्थ– नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इनकी सात सात लाख, वनस्पतिकी दश लाख, विकलेंद्रियों (द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय) की छह लाख, देव, नारकी तथा तिर्यंच इनकी चार चार लाख और मनुष्यकी चौदह लाख इसप्रकार सब मिलाकर चौरासी लाख योनियां होती हैं ।

२- जं चदुगदिदेहीणं देहायारं पदेसपरिमाणं । अह विग्गहगइजीवे तं दव्वविहावपज्जायं ॥

अर्थ– चारों गतियोंमें रहनेवाले संसारी जीवका जो प्राप्त शरीरके आकारप्रदेशोंका परिमाण होता है अथवा विग्रहगतिमें पूर्वशरीरके आकारप्रदेशोंका परिमाण होता है वह जीवकी विभावद्रव्यपर्याय है ।

३- मदिसुदओही मणपज्जयं च अण्णाण तिण्णि जे भणिया । एवं जीवस्स इमे विहाव गुणपज्जया सव्वे ॥

अर्थ–- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, और कुअवधिज्ञान इसप्रकार जितनी भी अवस्थायें होती हैं वे सब जीवकी विभावगुण पर्यायें हैं ।

४- शास्त्रोंमें पर्यायोंके गुणपर्याय अथवा अर्थपर्याय, द्रव्यपर्याय अथवा व्यंजनपर्याय इसप्रकार दो भेद मिलते हैं उनमेंसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ— परनिमित्तसे उत्पन्न होनेवाले मतिज्ञानादिक गुणोंको जीवकी विभावगुणव्यंजनपर्याय कहते हैं।

जीवकी स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय।

स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्यायाश्चरमशरीरात्किंचिन्न्यूनसिद्धपर्यायाः।

अर्थ— चरमशरीर (अन्तिम शरीर) के प्रदेशोंसे कुछ कम प्रदेशवाली सिद्धपर्याय जीवकी स्वभाव द्रव्यव्यंजनपर्याय है।

भावार्थ— अन्तिम शरीरके प्रदेशोंसे कुछ कम प्रदेशोंवाली सिद्धपर्यायको जीवकी स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय कहते हैं।

जीवकी स्वभावगुणव्यंजनपर्याय।

स्वभावगुणव्यंजनपर्याया अनन्तचतुष्टयस्वरूपा जीवस्य।

अर्थ— अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यस्वरूप स्वचतुष्टय जीवकी

प्रदेशवत्व गुणके विकारको व्यंजनपर्याय और शेष गुणोंके विकारको अर्थपर्याय कहते हैं। परन्तु आलापपद्धतिमें द्रव्यपर्याय और गुण-पर्याय इन दोनों पर्यायोंमें व्यंजन शब्दका उपयोग किया गया है, इसलिए यहांपर व्यंजन शब्दका अर्थ अभिव्यक्ति अथवा प्रगटता ही समझना चाहिये। क्योंकि चाहे द्रव्यपर्याय हो अथवा गुणपर्याय दोनोंही पूर्व अवस्थाका परित्याग करके उत्तर अवस्थारूपसे अभिव्यक्त होती हैं, इसलिए कोई भी सिद्धांत विरोध नहीं आता है।

१- देहायारपएसा जे थक्का उहयकम्मणिम्मुक्का। जीवस्स णिच्चला खलु ते सुद्धा दव्वपज्जाया॥

अर्थ— द्रव्य और भाव दोनों ही प्रकारके कर्मोंसे रहित मुक्तजीवके (कुछ कम) अन्तिम शरीरके आकार जो प्रदेश हैं उनको जीवकी स्वभावद्रव्यपर्याय कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभावगुणव्यंजनपर्याय[1] है।

भावार्थ— उपाधिरहित शुद्ध जीवके अनन्तज्ञानादि गुणोंका जो स्वस्वरूप परिणमन होता है उसे स्वभाव गुणव्यंजनपर्याय कहते हैं।

पुद्गलकी विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय।

पुद्गलस्य तु[2] द्व्यणुकादयो विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः।

अर्थ— द्व्यणुकादिक स्कन्ध पुद्गलकी विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय हैं।

भावार्थ— पृथिवी, जल आदि[3] नाना प्रकारके स्कन्धोंको पुद्गलकी विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय[4] कहते हैं।

पुद्गलकी विभावगुणव्यञ्जनपर्याय।

रसरसान्तरगन्धगन्धन्तरादि विभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः।

अर्थ— रससे रसान्तर तथा गन्धादिकसे गन्धान्तरादिकरूप होनेवाला रसादिकगुणोंका परिणमन पुद्गलकी

१- णाणं दसंण सुह वीरियं च जं उहयकम्मपरिहीणं। तं सुद्धं जाण तुमं जीवे गुणपज्जयं सव्वं॥

अर्थ— दोनों प्रकारके कर्मोंसे रहित शुद्ध जविके अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यको जीवकी स्वभावगुणपर्याय कहते हैं।

२- तु शब्द विशेष अर्थमें है।

३. आदि शब्दसे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत वगैरहको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि ये सब ही पुद्गलद्रव्यकी विभावव्यञ्जनपर्यायें हैं।

४- जे संखाई खंधा परिणमिआ दु अणु आदि खंदेहिं। ते चिय दव्वविहावा जाण तुमं पोग्गलाणं च।

अर्थ— द्व्यणुकादिक स्कन्धोंके द्वारा होनेवाले अनेक प्रकारके स्कन्धोंको अर्थात्, द्व्यणुकादिक स्कन्धरूपसे होनेवाले पुद्गल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभावगुणव्यञ्जनपर्याय[1] है।

भावार्थ— द्व्यणुकादिक स्कन्धोंमें एक वर्णसे दूसरे वर्णरूप, एक रससे दूसरे रसरूप, एक गन्धसे दूसरे गन्धरूप और एक स्पर्शसे दूसरे स्पर्शरूप होनेवाले परिणमनको पुद्गलकी विभावगुणव्यञ्जनपर्याय कहते हैं।

पुद्गलकी स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय।

अविभागिपुद्गलपरमाणुः स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः।

अर्थ— अविभागी पुद्गल परमाणु पुद्गलकी स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय[2] है।

भावार्थ— शुद्ध परमाणुरूपसे पुद्गल द्रव्यकी अवस्थिति है उसके पुद्गल द्रव्यकी स्वभावद्रव्यव्यञ्जन-पर्याय कहते हैं।

पुद्गलकी स्वभावगुणव्यंजनपर्याय।

वर्णगन्धरसैकैकाविरुद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः।

अर्थ— परमाणु सम्बन्धी एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और अविरोधी दो स्पर्श[3] पुद्गलकी स्वभावगुणव्यंजन

परमाणुओंके परिणमनको पुद्गलकी विभावद्रव्यपर्याय कहते हैं।

१- रूपाइय ज़े उत्ता जे दिट्ठा दअणुआइ खंधम्मि। ते पुग्गलाणं भणिया विहावगुणपज्जया सव्वे॥

अर्थ— द्व्यणुकादिक स्कन्धोंमें पाये जानेवाले रूपादिकको पुद्गलकी विभावगुणपर्याय कहते है।

२- जो खलु अणाइणिहणो कारणरूवो हु कज्जरूवो वा। परमाणुपोग्गलाणं सो दव्वसहावपज्जाओ।

अर्थ— जो अनादि निधन कारण तथा कार्यरूप विभाव रहित शुद्ध परमाणु है उसको पुद्गलकी स्वभावद्रव्यपर्याय कहते हैं।

३- परमाणुमें शीत और उष्ण स्पर्शमेंसे एक तथा स्निग्ध व रूक्षमेंसे एक इसतरह दोही स्पर्श पाये जाते हैं। क्योंकि मृदु वगैरह बाकीके चार स्पर्श अपेक्षाकृत हैं। इसलिए वे परमाणुमें नहीं पाये जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय[1] हैं।

भावार्थ— परमाणुमें जो एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध और अविरोधी दो स्पर्श पाये जाते हैं, जो अगुरुलघु गुणके निमित्तसे अपने २ अविभागीप्रतिच्छेदोंके द्वारा परिणमनशील हैं उनको पुद्गलकी स्वभावगुणव्यंजन-पर्याय कहते हैं।

दृष्टांतपूर्वक द्रव्य और उसमें होनेवाली पर्यायोंका कथन—

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥

अन्वयार्थ— (**जले**) जलमें (**जलकल्लोलवत्**) जलकी कल्लोलोंकी तरह (**अनाद्यनिधने**) अनादि और अनिधन अर्थात् उत्पत्ति व विनाशसे रहित (**द्रव्ये**) द्रव्यमें (**स्वपर्यायाः**) द्रव्यकी निज पर्यायें (**प्रतिक्षणम्**] प्रत्येक समयमें (**उन्मज्जन्ति**] उत्पन्न होती हैं तथा [**निमज्जन्ति**] नष्ट होती हैं।

भावार्थ— जैसे जलमें प्रतिसमय कल्लोलों (लहरों) के उत्पन्न तथा विनष्ट होनेपर भी जल अपने स्वरूपसे तदवस्थ रहता है। वैसेही द्रव्यमें प्रतिसमय पर्यायोंके उत्पन्न और विनष्ट होनेपर भी द्रव्य अपने स्वरूपसे तदवस्थ ही रहता है।

यहांपर उत्पन्न तथा विनष्ट शब्दका 'भूत्वाभवन, (होकरके होना) अर्थ ग्रहण करना चाहिये; अर्थात् जिसप्रकार जलमें पहली कल्लोलके अभाव होजानेके अनंतर उससे सर्वथा भिन्न दूसरी कल्लोल उत्पन्न नहीं होती है, किन्तु पहली कल्लोल ही दूसरी कल्लोलरूप होजाती है। ऐसा, जलमें प्रतिसमय कल्लोलोंके उत्पन्न तथा विनष्ट होनेका

१- रूवरसगंधफासा जे थक्का तेसु अणुकदव्वेसु। ते चेव पोग्गलाणं सहावगुणपज्जया णेया ॥

अर्थ— परमाणुमें पायेजानेवाले रूप, रस, गन्ध और स्पर्शको पुद्गलकी स्वभावगुणपर्याय कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ ग्रहण कियाजाता है। उसीप्रकार द्रव्यमें पहली पर्यायके अभाव होजानेके अनंतर उससे सर्वथा भिन्न दूसरी पयार्य उत्पन्न नहीं होती है। किन्तु पहली पर्याय ही दूसरी पर्यायरूप होजाती है। ऐसा, द्रव्यमें प्रतिसमय पर्यायोंके उत्पन्न और विनष्ट होनेका अर्थ ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि विनष्ट तथा उत्पन्न शब्दका अर्थ पहली पर्यायके सर्वथा नाश और दूसरी पर्यायका उससे सर्वथा भिन्न उत्पादरूप मानने पर सत्के विनाश और असत्के उत्पादका प्रसङ्ग आता है।

आगे– किस द्रव्यमें कौनसी पर्याय होती है इस बातको बताते हैं।

धर्माधर्मनभःकाला अर्थपर्यायगोचराः[1]।
व्यञ्जनेन तु[2] सम्बद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ।

अन्वयार्थ— (**धर्माधर्मनभःकालाः**) धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये चार द्रव्य (**अर्थपर्यायगोचराः**) अर्थपर्यायके विषय हैं। अर्थात् इन चार द्रव्योंमें अर्थ पर्याय होती है (**तु**) तथा (**अन्यौ जीवपुद्गलौ द्वौ**) धर्मादिकसे अन्य-भिन्न जीव व पुद्गल ये दो द्रव्य (**व्यंजनेन**) व्यञ्जन पर्यायसे (**सम्बद्धौ**) सम्बद्ध-युक्त हैं अर्थात् इन दो द्रव्योंमें ही व्यञ्जनपर्याय होती है।

भावार्थ— प्रदेशवत्व गुणके विकारको व्यंजन या द्रव्यपर्याय कहते हैं, तथा प्रदेशवत्व गुणको छोड करके अन्य समस्त गुणोंके विकारको अर्थ या गुणपर्याय कहते हैं और उस (गुणपर्याय) के दो भेद हैं। एक स्वभावगुणपर्याय तथा दूसरी विभावगुणपर्याय। इनमेंसे धर्मादिक चार द्रव्योंमें स्वभावगुणपर्याय और स्वभावद्रव्यपर्याय ही

१- सूक्ष्मः प्रतिक्षणध्वंसी पर्यायश्चार्थसंज्ञकः। २- स्थूलो व्यंजनपर्यायो वाग्गम्यो नश्वरः स्थिरः।

अर्थ— अर्थपर्याय सूक्ष्म और प्रतिसमय विनाशीक होती है। तथा व्यंजनपर्याय स्थूल, वचनके गोचर, नश्वर और स्थिर होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है। धर्मद्रव्यमें गतिहेतुत्व, अधर्मद्रव्यमें स्थितिहेतुत्व, आकाशद्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व तथा कालद्रव्यमें वर्तनाहेतुत्व स्वभावगुणपर्याय[1] है। और धर्मादिक चारों द्रव्य जिस २ आकारसे संस्थित हैं वह वह आकार उनकी स्वभावद्रव्यपर्याय[2] है। तथा जीव और पुद्गलमें स्वभाव और विभाव दोनों प्रकारकी पर्यायें पाई जाती हैं।

इति पर्यायाधिकारः।

अर्थ– इस प्रकार पर्यायके स्वरूप आदिको बतानेवाला पर्यायका अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. गदिठिदिवट्ठणगहणा धम्माधम्मेसु गगणकालेसु। गुणसब्भावो पंज्जय दवियसहावो दु पुव्वुत्तो ॥

अर्थ– गति, स्थिति, वर्त्तना और अवगाहन ये चारों क्रमसे धर्म, अधर्म, काल तथा आकाशकी स्वभावगुणपर्याय है।

२. दव्वाणं खु पयेसा जे जे ससहाव संठिया लोए। ते ते पुण पज्जाया जाणतुमं दविण सब्भावं ॥

अर्थ– जीवादिक छहों द्रव्योंके अपने २ स्वभावमें स्थित जो जो प्रदेश हैं वे वे प्रदेश उनकी स्वभावद्रव्यपर्याय हैं। पर्यायका अर्थ परिणमन है परन्तु धर्मादिक चारों द्रव्योंके प्रदेशोंमें प्रदेशरूपसे कोई परिवर्तन नहीं होता है इसलिये व्यंजनपर्याय वास्तविक रीतिसे जीव और पुद्गलमें ही समझना चाहिये इन चारों द्रव्योंमें व्यंजनपर्याय कथन उपचारमात्र "धर्माधर्म" इत्यादि श्लोकसे इसलिये ही धर्मादिक चारों द्रव्योंमें व्यंजनपर्यायका निषेध किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकारान्तरसे द्रव्यका लक्षण ।

गुणपर्ययवद्द्रव्यं ।

अर्थ— जो गुण और पर्यायवान् होवे उसको द्रव्य कहते हैं ।

भावार्थ— गुणों तथा पर्यायोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं ।

अथ स्वभावाः कथ्यन्ते ।

अर्थ— अब स्वभावोंका कथन (वर्णन) करते हैं ।

सामान्यस्वभावोंके[1] नाम ।

अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्यस्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः, भेदस्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परमस्वभावः, एते द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः।

अर्थ— अस्तिस्वभाव, नास्तिस्वभाव, नित्यस्वभाव, अनित्यस्वभाव, एकस्वभाव अनेकस्वभाव, भेदस्वभाव, अभेदस्वभाव, भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव, और परमस्वभाव ये द्रव्योंके ग्यारह सामान्य स्वभाव हैं ।

विशेष स्वभावोंके नाम[2]

१- जो स्वभाव सामान्यरूपसे सब द्रव्योंमें पाये जाते हैं उन्हें सामान्य स्वभाव कहते हैं और वे ग्यारह प्रकारके होते हैं जैसे-अत्थित्ति णत्थि णिच्चं अणिच्चमेगं अणेग भेदिदरं । भव्वाभव्वं परमं सामण्णं सव्वदव्वाणं ॥

(अर्थ उपर लिखागया है)

२- जो स्वभाव सब द्रव्योंमें नहीं पाये जाते हैं उन्हें विशेष स्वभाव कहते हैं और वे दश प्रकारके होते हैं । जैसे चेदणमचेदणंपि हु मुत्तममुत्तं च एग वहुदेसं । सुद्धासुद्धविहावं उवयरियं होइ करसेव ॥ (अर्थ उपर लिखागया है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेतनस्वभावः, अचेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः, एते द्रव्याणां दश विशेषस्वभावाः ।

अर्थ— चेतनस्वभाव, अचेतनस्वभाव, मूर्तस्वभाव, अमूर्तस्वभाव, एकप्रदेशस्वभाव, अनेकप्रदेश स्वभाव, विभावस्वभाव, शुद्धस्वभाव, अशुद्धस्वभाव, और उपचरितस्वभाव ये द्रव्योंके दश विशेष स्वभाव हैं ।

जीव और पुद्गलद्रव्यमें पाये जानेवाले स्वभावोंकी संख्या ।

जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः ।

अर्थ— इक्कीस[1] प्रकारके स्वभावोंमेंसे जीव और पुद्गलद्रव्यमें इक्कीस इक्कीसही स्वभाव पाये जाते हैं ।

भावार्थ— जीवद्रव्यमें अचेतन तथा मूर्त ये दो स्वभाव और पुद्गल द्रव्यमें चेतन व अमूर्त ये दो स्वभाव असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे माने गये हैं, वास्तवमें नहीं ।

धर्मादिक तीन द्रव्योंमें पाये जानेवाले स्वभावोंकी संख्या ।

चेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, विभावस्वभावः, उपचरितस्वभावः[2], अशुद्धस्वभावः एतैः पंचभिः स्वभावैर्विना धर्मादित्रयाणां षोडश स्वभावाः सन्ति ।

१- इन सब स्वभावोंका खुलासा ग्रन्थकारने आगे स्वयं ही किया है इसलिए वहांसे ही इन सबका स्वरूप समझलेना चाहिये ।

२- मूलपुस्तकमें 'एकप्रदेशस्वभावः' ऐसा पाठ है । परन्तु वह अशुद्ध प्रतीत होता है । क्योंकि जैनसिद्धांतमें धर्मादिक तीनों द्रव्य अखण्ड और एक २ माने गये हैं, इसलिए अखण्डैकद्रव्यपनेकी अपेक्षासे उनमें एक प्रदेश स्वभाव तो पाया जाता है । किन्तु उपचरितस्वभाव किसी भी अपेक्षासे नहीं पाया जाता है । कारण कि जिसप्रकार जीवमें अचेतन व मूर्तस्वभावकी तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— इक्कीस प्रकारके स्वभावोंमेंसे धर्म, अधर्म तथा आकाशद्रव्यमें चेतनस्वभाव, मूर्तस्वभाव, विभावस्वभाव, उपचरितस्वभाव और अशुद्धस्वभाव इन पांच स्वभावोंके विना बाकीके सोलह २ स्वभाव पाये जाते हैं।

कालद्रव्यमें पाये जानेवाले स्वभावोंकी संख्या।

तत्र बहुप्रदेशं विना कालस्य पंचदश स्वभावाः।

अर्थ— धर्मादिक तीन द्रव्योंमें पायेजानेवाले सोलह प्रकारके स्वभावोंमेंसे कालद्रव्यमें अनेकप्रदेशस्वभावके विना बाकीके पन्द्रह स्वभाव पाये जाते हैं। जैसा कि कहा भी है—

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः।
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पंचदश स्मृताः॥ ३॥

अन्वयार्थ— (**जीवपुद्गलयोः**) जीव और पुद्गलमेंसे प्रत्येकमें (**एकविंशतिभावाः**) इक्कीस २

पुद्गलमें चेतन और अमूर्तस्वभावकी उपचारसे कल्पना कीजाती है उसप्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें जो स्वभाव नहीं पाया जाता है उस स्वभावकी उपचारसे भी कल्पना नहीं कीजाती है।

यदि धर्मादिक द्रव्योंमें उपचरित स्वभावका निषेध न मानकर एकप्रदेशस्वभावका ही निषेध माना जायगा तो उस निषेधकी अनुवृत्ति कालद्रव्यमें भी चली आयगी, इसलिये फिर उसमें भी एकप्रदेशस्वभावका निषेध मानना पडेगा। परन्तु ऐसा मानना ठीक नहीं है। क्योंकि जैनसिद्धांतमें कालद्रव्यको एकप्रदेशी माना है। दूसरे धर्मादिक द्रव्योंमें एकप्रदेशस्वभावका निषेध माननेसे ग्रन्थमें पूर्वापर विरोध भी आता है कारण कि ग्रन्थकारने आगे स्वयं इन द्रव्योंमें एकप्रदेशस्वभावका विधान और उपचरितस्वभावका निषेध किया है। अतएव धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन चार द्रव्योंमें एक प्रदेशस्वभावका निषेध न मानकर उपचरितस्वभावका निषेध मानना ही ठीक तथा युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव (स्युः) होते हैं तथा (धर्मादीनां) धर्म, अधर्म, और आकाश इन तीन द्रव्योंमेंसे प्रत्येक द्रव्यमें (षोडश) सोलह २ स्वभाव (स्युः) होते हैं और (काले) कालद्रव्यमें (पंचदश) पन्द्रह स्वभाव [स्मृताः] होते हैं ऐसा [मताः] पूर्वाचार्योंके द्वारा माना गया है ।

प्रश्न– ते कुतो ज्ञेयाः ?

अर्थ— वे इक्कीसप्रकारके स्वभाव किससे जाने जाते हैं अर्थात् उन स्वभावोंके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान किसके द्वारा होता है ?

उत्तर--- प्रमाणनयविवक्षातः ।

अर्थ— प्रमाण और नयकी विवक्षासे ।

भावार्थ— प्रमाण तथा नयकी विवक्षाके द्वारा उन स्वभावोंके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होता है ।

प्रमाणका लक्षण ।

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् ।

अर्थ— सम्यग्ज्ञानको प्रमाण कहते हैं ।

भावार्थ— संशय[1] विपर्यय[2] तथा अनध्यवसायसे[3] रहित ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते है अर्थात् जो न्यूनता

१- विरुद्ध अनेक कोटियोंके स्पर्श करानेवाले ज्ञानको संशय कहते हैं । जैसे यह स्थाणु (किसी क्षेत्रवगैरहकी मर्यादाके लिये गाडागया काष्ठविशेष) है या पुरुष । २- विपरित एक कोटिके निश्चय करनेवाले ज्ञानको विपर्यय कहते हैं, जैसे स्थाणुको ही पुरुष समझलेना । ३- 'यह क्या है , इस प्रकारके सामान्य प्रतिभासको अनध्यवसाय कहते हैं । जैसे मार्गमें चलते समय तृण वगैरहका ज्ञान ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहित अधिकता[१] रहित जैसाका तैसा, विपरीततारहित और संदेहसे रहित ज्ञान होता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं और स्वपरप्रकाशक उस सम्यग्ज्ञानको ही प्रमाण कहते हैं।

प्रमाणके भेद।

तद्द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात्।

अर्थ—- प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे वह प्रमाण दो प्रकारका है।

भावार्थ— प्रमाणके दो भेद हैं एक प्रत्यक्ष प्रमाण और दूसरा परोक्ष प्रमाण। उनमेंसे यहांपर पहले प्रत्यक्ष प्रमाणका ही कथन किया जाता है। जो पदार्थोंको स्पष्ट जानता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं इसके सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तथा पारमार्थिक प्रत्यक्ष इसतरह दो भेद हैं। जो इंद्रिय और मनकी सहायतासे पदार्थोंको एकदेश स्पष्ट जानता है उसको सांव्यवहारिक[२]प्रत्यक्ष कहते हैं। तथा जो विना किसीकी सहायताके ही पदार्थोंको स्पष्ट जानता है उसको पारमार्थिकप्रत्यक्ष कहते हैं। इस पारमार्थिक प्रत्यक्षके दो भेद हैं। एकदेश अर्थात् विकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष और दूसरा सर्वदेश अर्थात् सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष।

जो इंद्रिय तथा मनकी सहायताके विना ही रूपी पदार्थोंको एकदेश स्पष्ट जानता है उसको एकदेश अथवा विकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

१- अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्। निःसंदेहं वेद यथाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः॥ (रत्नकरण्डश्रावकाचार)

२- समीचीनः प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणः व्यवहारः संव्यवहारः। संव्यवहारे भवं सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षं। अर्थात् समीचीन प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप व्यवहारको संव्यवहार कहते हैं। और उस संव्यवहारमें जो होवे उसको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे मैंने यह, घटका रूप देखा इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकदेशप्रत्यक्षके भेद ।

अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षौ ।

अर्थ— अवधि और मनःपर्यय ये दो ज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष[1] हैं ।

भावार्थ— एकदेश प्रत्यक्षके दो भेद हैं एक अवधिज्ञान और दूसरा मनःपर्ययज्ञान । उनमेंसे पहले यहांपर अवधिज्ञानका ही कथन किया जाता है । द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावकी मर्यादा लिये हुये जो ज्ञान दूसरेकी सहायताके विना रूपी[2] पदार्थोंको एकदेश स्पष्ट जानता है उसको अवधिज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान रूपी पुद्गलद्रव्यकी सम्पूर्ण पर्यायोंको न जानकर कुछ पर्यायोंकोही जानता है इसलिए देश कहलाता है, और जितनी पर्यायोंको

१- पंचाध्यायीकारने मति और श्रुतकी तरह अवधि तथा मनःपर्यय इन दोनों ज्ञानोंको भी परोक्ष माना है, क्योंकि ये दोनों ज्ञान भी छद्मस्थ अवस्थामें होते हैं । तथा आवरण और इंद्रियोंकी सहायताकी अपेक्षा रखते हैं, इसलिए वास्तवमें ये दोनों ज्ञान भी परोक्ष ही हैं । किन्तु विवक्षावश केवल उपचारसे एकदेशप्रत्यक्ष कहे जाते हैं । इन दोनों ज्ञानोंको उपचारसे एकदेश प्रत्यक्ष कहनेका कारण भी पंचाध्यायीकारने यह बतलाया है कि जिसप्रकार मति और श्रुतज्ञान इंद्रियोंसे उत्पन्न तथा अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणापूर्वक होते हैं उसप्रकार अवधि तथा मनःपर्यय ये दोनों ज्ञान इंद्रियोंसे उत्पन्न और अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणापूर्वक नहीं होते हैं । किन्तु वे लीलामात्रमें ही केवल मनकी सहायतासे दूरवर्ती पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानलेते हैं, इसलिये अवधि और मनःपर्यय ये दोनों ही ज्ञान उपचारसे एकदेशप्रत्यक्ष कहे जाते हैं । वास्तवमें ये प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु परोक्ष ही हैं ।

२- अवधिज्ञान, रूपी पुद्गलद्रव्यको जाननेके साथ २ रूपी द्रव्यके सम्बन्धसे जीवके औदायिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भावों (पर्यायों) को भी जानता है । किन्तु रूपी द्रव्यके सम्बन्धका अभाव होनेसे क्षायिक तथा पारिणामिक भावोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानता है उतनी पर्यायोंको इन्द्रिय तथा मनकी[1] सहायताके विनाही स्पष्टरूपसे जानता है इसलिए प्रत्यक्ष कहलाता है।

अवधिज्ञानके भेद — भवप्रत्यय और गुणप्रत्ययके भेदसे अवधिज्ञान दो प्रकारका है। अथवा देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधिके[2] भेदसे तीन प्रकारका भी है।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान— भवके[3] निमित्तसे जो अवधिज्ञान होता है उसको भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं। यह अवधिज्ञान सम्पूर्ण देव नारकी तथा तीर्थंकरोंकेही पाया जाता है। और उनके सम्पूर्ण अङ्गसे अर्थात् सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमें रहनेवाले अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है।

यद्यपि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी सम्यग्दर्शनादिक गुणोंका सद्भाव पाया जाता है तथापि उन गुणोंकी अपेक्षाके विनाही सम्पूर्ण देव नारकी और तीर्थंकरोंके भवके निमित्तसेही अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम-होकर अवधिज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। इसलिये उस (भवप्रत्ययअवधिज्ञान) में आभ्यंतर कारण क्षयोपशमके रहते हुये भी उन गुणोंकी अपेक्षा नहीं कीजाती है परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो उसमें उन गुणोंका सद्भाव पाया ही

और धर्मास्तिकायादिकको नहीं जानता है। १- पंचाध्यायीकारने अवधिज्ञानमें भी मनकी सहायता मानकर, अवधिज्ञान मनकी सहायतासे उत्पन्न होता है इसलिए देश कहलाता है, और शेष इंद्रियोंकी सहायतासे उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए प्रत्यक्ष कहलाता है ऐसा माना है।

२- सर्वावधिमें सर्व शब्दको निरवशेष [संपूर्ण] अर्थका वाची होनेसे सर्वावधिकी अपेक्षा परमावधि भी देशावधि ही कहाजाता है। इसलिए अवधिज्ञानके देशावधि और सर्वावधि इस तरह भी दो भेद माने गये हैं। ३- आयु तथा नामकर्मके उदयविशेषसे होनेवाली पर्यायको भव कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है। क्योंकि सम्यग्दर्शनके अभावमें होनेवाला अवधिज्ञान, अवधिज्ञानही नहीं कहलाता है। किन्तु विभंग-ज्ञान कहा जाता है।

जैसे शिक्षा आदि विशेष गुणोंके विना ही भवके निमित्तसे आकाशमें पक्षियोंका गमन होता है वैसेही यह अवधिज्ञान व्रतनियमादिक गुणोंकी अपेक्षाके विना ही सामान्यरूपसे भवका निमित्त पाकरके सम्पूर्ण देव नारकी और तीर्थंकरोंके उत्पन्न होजाता है, इसलिए इस अवधिज्ञानको भवप्रत्यय कहते हैं। तथा यह अवधिज्ञान नियमसे देशावधि ही होता है। क्योंकि परमावधि और सर्वावधि ये दोनों ज्ञान संयमादिक विशेष गुणोंके सद्भावमें ही होते हैं, इसलिए देव, नारकी तथा गृहस्थ तीर्थंकरोंके नहीं पाये जाते हैं।

भावार्थ— जिसप्रकार आकाशके विद्यमान होते हुए ही पक्षियोंका गमन होता है उसीप्रकार भवप्रत्यय अवधिज्ञान भी अन्तरंगमें अवधिज्ञानावरण और वीर्यांतरायकर्मके क्षयोपशम होनेपर ही होता है। भव तो उसकी उत्पत्तिमें एक बाह्य निमित्तकारणमात्र है। क्योंकि जैसे मनुष्य तथा तिर्यंचोंके दर्शनविशुद्धि और अहिंसादिक व्रतोंके नियमकी अपेक्षापूर्वक अवधिज्ञान होता है वैसे देव, नारकी तथा गृहस्थ तीर्थंकरोंके दर्शनविशुद्धि और अहिंसादिक व्रतोंके नियमकी अपेक्षापूर्वक अवधिज्ञान नहीं होता है। किन्तु भवका निमित्त पाकरके ही उनके अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर अवधिज्ञान उत्पन्न होजाता है इसलिए वहांपर भव ही बाह्य साधन है ऐसा कहाजाता है।

यदि भवप्रत्यय अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें केवल भव ही कारण माना जायगा तो संपूर्ण देव और नारकियोंके समानरूपसे अवधिज्ञानके माननेका प्रसंग आवेगा, परन्तु ऐसा मानना जैनसिद्धांतके विरुद्ध है। क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनसिद्धान्तमें देव तथा नारकियोंके हीनाधिक रूपसे अवधिज्ञान मानागया है जैसे, क्षेत्रकी अपेक्षा—देवोंमें दश-प्रकारके भवनवासियोंके अधोभागमें अवधिज्ञानके विषयभूत जघन्य क्षेत्रका प्रमाण तो पचीस योजन है, और उत्कृष्ट असुरकुमारोंके, अधोभागमें असंख्यात कोडाकोडी [1] योजन है। ऊर्ध्वभागमें ऋजुविमानेक ऊपरके भागतक है। नागकुमारादिक शेष नव प्रकारके भवनवासियोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानके क्षेत्रका प्रमाण, अधोभागमें असंख्यात हजार योजन है, ऊर्ध्वभागमें मेरुपर्वतकी चूलिका (चोटी) के ऊपरके भागतक है। और तिर्यग् रूपमें दशों ही प्रकारके भवनवासियोंके अवधिज्ञानके क्षेत्रका प्रमाण असंख्यात हजार योजन है। आठ प्रकारके व्यन्तरोंके अधोभागमें जघन्य अवधिका प्रमाण तो पच्चीस योजन है। तथा उत्कृष्ट, अधोभागमें असंख्यात हजार योजन है, ऊर्ध्वभागमें, अपने २ विमानके ऊपरी भागतक है। तिर्यक् असंख्यात कोडाकोडी योजन है। ज्योतिषीदेवोंके, अधोभागमें जघन्य अवधिका प्रमाण संख्यात योजन है, और उत्कृष्ट, असंख्यात हजार योजन है, ऊर्ध्वभागमें अपने २ विमानके ऊपरी भागतक है, तिर्यक् असंख्यात कोडाकोडी योजन है। वैमानिक देवोंमें सौधर्म तथा ईशान स्वर्गवाले देवोंके, अधोभागमें जघन्य अवधिका प्रमाण असंख्यात हजार योजन है, उत्कृष्ट अवधिका प्रमाण, रत्नप्रभा पृथ्वीके अन्तिमभागतक है। सानत्कुमार और माहेंद्र स्वर्गवाले देवोंके, अधोभागमें जघन्य अवधिका प्रमाण रत्नप्रभापृथ्वीके अन्तिमभागतक है, उत्कृष्ट अवधिका प्रमाण शर्कराप्रभापृथ्वीके अन्तिमभागतक है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव तथा कापिष्ठ स्वर्गवाले देवोंके, अधोभागमें जघन्य

१- गोम्मटसारमें असुरकुमारोंके उत्कृष्ट अवधिके क्षेत्रका प्रमाण केवल असंख्यात कोटि योजन बतलाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधिका प्रमाण शर्कराप्रभापृथ्वीके अन्तिम भागतक है, उत्कृष्ट अवधिका प्रमाण वालुकाप्रभापृथ्वीके अन्तिमभागतक है। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्गवाले देवोंके अधोभागमें जघन्य अवधिका प्रमाण वालुकाप्रभा पृथ्वीके अन्तिम भागतक है, उत्कृष्ट अवधिका प्रमाण पंकप्रभा पृथ्वीके अन्तिम भागतक हैं। आनत प्राणत आरण तथा अच्युत स्वर्गवाले देवोंके अधोभागमें जघन्य अवधिका प्रमाण पंकप्रभा पृथ्वीके अन्तिम भागतक है, उत्कृष्ट अवधिका प्रमाण धूमप्रभा पृथ्वीके अन्तिम भागतक है। नवग्रैवेयिक विमान-वाले देवोंके अधोभागमें जघन्य अवधिका प्रमाण धूमप्रभापृथ्वीके अन्तिम भागतक है, उत्कृष्ट अवधिका प्रमाण तमःप्रभापृथ्वीके अन्तिम भागतक है। नव अनुदिश और पंच अनुत्तर विमानवाले देवोंके अधोभागमें अवधिका प्रमाण सम्पूर्ण लोकनाली तक है। तथा सौधर्म स्वर्गसे लेकर अनुत्तर विमानवाले देवों तकके ऊर्ध्वभागमें अवधिका प्रमाण अपने २ विमानके ऊपरी[1] भागतक है। और तिर्यक् असंख्यात कोडाकोडी योजन है।

कालकी अपेक्षा— भवनवासी और व्यन्तर देवोंकी अवधिके जघन्यकालका प्रमाण कुछ कम एक दिन है। ज्योतिषी देवोंकी जघन्य अवधिके कालका प्रमाण भवनवासी तथा व्यन्तर देवोंकी अवधिके कालके प्रमाणसे बहुत अधिक है। असुरकुमारोंकी अवधिके उत्कृष्ट कालका प्रमाण असंख्यात वर्ष हैं। शेष नौ प्रकारके भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी अवधिके उत्कृष्ट कालका प्रमाण असुरकुमारोंकी अवधिके

१- त्रिलोकसारमें वैमानिक देवोंके ऊर्ध्वभागमें अवधिका प्रमाण अपने २ विमानके ध्वजा दण्डतक है ऐसा लिखा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्ट कालके प्रमाणसे संख्यातमे भागमात्र है । सौधर्म तथा ईशान स्वर्गके देवोंकी अवधिके कालका प्रमाण असंख्यात करोड वर्ष है । सानत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गके देवोंकी अवधिका काल यथायोग्य पल्यके असंख्यातमे भाग प्रमाण हैं । और लान्तव स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंकी अवधिका काल कुछ कम पल्ल्य प्रमाण हैं । अथवा जिसका जितना अवधिज्ञानका क्षेत्र है उसका, उतने क्षेत्रमें रहनेवाले आकाशके प्रदेशोंके प्रमाणके बराबर अतीत और अनागत समयोंमें अवधिज्ञान प्रवृत्त होता है ।

द्रव्यकी अपेक्षा— जिसका जितना अवधिज्ञानका क्षेत्र है उसका, उतने क्षेत्रमें रहनेवाले आकाशके प्रदेशोंके प्रमाणके बराबर असंख्यात भेदवाले अनन्तदेशी पुद्गलस्कन्धोंमें और यथायोग्य कर्मसहित जीवोंमें अवधिज्ञान प्रवृत्त होता है ।

भावकी अपेक्षा — जिसका अवधिज्ञान अपने विषयभूत जितने पुद्गलस्कन्धोंको जानता है । उसका, उतने पुद्गलस्कान्धोंके रूपादिक विकल्पोंमें और यथायोग्य, पौद्गलिक होनेसे औदयिक औपशमिक तथा क्षायोपशमिक रूप जीवके परिणामोंमें अवधिज्ञान प्रवृत्त होता है ।

नारकियोंमें क्षेत्रकी अपेक्षा— रत्नप्रभा नामक पहली पृथिवीमें अवधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण अधोभागमें एक योजन है । दूसरी पृथिवीमें साडेतीन कोश है । तीसरी पृथिवीमें तीन कोश है । चौथी पृथिवीमें अढाई कोश है । पाचमी पृथिवीमें दो कोश है । छट्टी पृथिवीमें डेढ कोश है । सातमी पृथिवीमें एक कोश है । संपूर्ण पृथिवियोंमें नारकियोंके अवधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण ऊर्ध्वभागमें अपने २ नरक (विल) के अन्तिम स्थानतक है । और तिर्यक् असंख्यात कोडाकोडी योजन है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालकी अपेक्षा जिसका जितना अवधिज्ञानका क्षेत्र है उसका, उतने क्षेत्रमें रहनेवाले आकाशके अतीत और अनागत समयोंमें अवधिज्ञान प्रवृत होता है।

द्रव्य तथा भावकी अपेक्षा— जिसप्रकारसे अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्य और भावका देवोंमें बताया है, उसीप्रकारसे नारकियोंमें भी अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्य तथा भावका प्रमाण समझना चाहिये। इसप्रकारसे देव और नारकियोंमें हीनाधिकरूपसे अवधिज्ञान पाया जाता है, इसलिये सिद्ध होता है कि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मका क्षयापेशम अन्तरङ्ग कारण है । और भव बाह्य कारण है ।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान — सम्यग्दर्शनादिक गुणोंके निमित्तसे जो अवधिज्ञान होता है उसको गुणप्रत्ययअवधिज्ञान कहते हैं । यह अवधिज्ञान पर्याप्तक मनुष्य तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यञ्चोंके ही पाया जाता है। और नाभिके ऊपर शंख, वज्र, पद्म, स्वस्तिक (सांथिया) मछली, कलश आदि शुभ चिन्होंसे युक्त आत्माके प्रदेशोंमें रहनेवाले अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है ।

यद्यपि गुणप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी मनुष्य और तिर्यंच पर्यायका सद्भाव पाया जाता है तथापि देव नारकियोंकी तरह यह अवधिज्ञान भवके निमित्तसे नहीं होता है किन्तु सम्यग्दर्शन तथा व्रत नियमादिक विशेष गुणोंके निमित्तसे ही मनुष्य और तिर्यंचोंके अवधिज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपशम होनेपर उत्पन्न होता है, इसलिए भवका सद्भाव रहते हुए भी उसमें उसकी अपेक्षा नहीं कीजाती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह अवधिज्ञान संपूर्ण मनुष्य तथा तिर्यंचोंके नहीं होता है किन्तु पर्याप्तक मनुष्य और संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तक तिर्यंचोंके ही होता है। तथा उनमें भी जिनके सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता और व्रतनियमादिक विशेष गुण पाये जाते हैं उनके ही होता है। दूसरोंके नहीं। इसलिए इस अवधिज्ञानको गुणप्रत्यय कहते हैं। इसके अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित इसतरह छह भेद हैं। इन्हीं छह भेदोंमें प्रतिपाती तथा अप्रतिपाती इसप्रकार दो भेदोंको और मिला देनेसे आठ भेद भी होजाते हैं।

१- जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवके साथ जाता है उसको अनुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। इसके तीन भेद हैं-क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी और उभयानुगामी। जो अवधिज्ञान अपनी उत्पत्तिके क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें विहार करनेवाले अपने स्वामी जीवके साथ रहता है-नष्ट नहीं होता है उसको क्षेत्रानुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञान अपनी उत्पत्तिके भवसे दूसरे भवमें भी अपने स्वामी जीवके साथ जाता है उसको भवानुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञान अपनी उत्पत्तिके क्षेत्र और भवसे दूसरे भरत, ऐरावत व विदेहादिक क्षेत्रोंमें तथा देवमनुष्यादिक दूसरी पर्यायोंमें अपने स्वामी जीवके साथ जाता है उसको उभयानुगामी अवधिज्ञान कहते हैं।

२- जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवके साथ नहीं जाता है उसको अननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। इसके भी तीन भेद है- क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी और उभयाननुगामी। जो अवधिज्ञान अपनी उत्पत्तिके क्षेत्रसे दूसरे भरत ऐरावतादिक क्षेत्रोंमें अपने स्वामी जीवके साथ नहीं जाता है किन्तु अपनी उत्पत्तिके क्षेत्रमें ही नष्ट होजाता है उसको क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञान अपनी उत्पत्तिके भवसे दूसरे भवमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने स्वामी जीवके साथ नहीं जानता है किन्तु अपनी उत्पत्तिके भवमें ही नष्ट होजाता है उसको भवानुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञन अपनी उत्पत्तिके क्षेत्र और भवसे दूसरे क्षेत्र तथा भवमें अपने स्वामी जविके साथ नहीं जाता है किन्तु अपने उत्पन्न होनेके क्षेत्र और भवमें ही नष्ट होजाता है उसको उभयाननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं।

३- जो अवधिज्ञान शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह अपने उत्कृष्ट अन्तिम स्थानकत बढता जावे उसको वर्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

४ जो अवधिज्ञान कृष्ण पक्षके चन्द्रमाकी तरह अपने क्षयहोनेके अन्तिम स्थानतक घटता जावे उसको हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं।

५- जो अवधिज्ञान सूर्य मण्डलकी तरह न कभी कम होता है और न कभी अधिक होता है किन्तु सदैव एकसा रहता है उसको अवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं।

६- जो अवधिज्ञान चन्द्रमण्डलकी तरह कभी कम होता है और कभी अधिक होता है उसको अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं।

७- जो अवधिज्ञान सम्यक्त्व और चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व तथा असंयम अवस्थाको प्राप्त होता है उसको प्रतिपाती अवधिज्ञान कहते हैं।

८- जो अवधिज्ञान मिथ्यात्व और असंयम अवस्थाको प्राप्त नहीं होता है उसको अप्रतिपाती अवधिज्ञान कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन आठ भेदोंमेंसे देशावधिमें आठोंही भेद पाये जाते हैं। परमावधिमें हीयमान तथा प्रतिपाती भेदको छोडकर बाकीके छह भेद पाये जाते हैं। सर्वावधिमें अनुगामी, अननुगामी, अवस्थित और अप्रतिपाती इसतरह चार ही भेद पाये जाते है।

भावार्थ— परमावधि तथा सर्वावधि ये दोनों ज्ञान अपनी उत्पत्तिके क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें अपने स्वामी जीवके साथ जाते हैं इसलिए अनुगामी कहलाते हैं। और तद्भवमोक्षगामी जीवोंके ही होते हैं इसलिये देवमनुष्यादिक दूसरे भवोंमें नहीं जानेके कारण अननुगामी कहलाते हैं। जिसके जितने प्रमाणको लिए हुए उत्पन्न होते हैं उसके उतने प्रमाणसे कभी कम नहीं होते हैं, इसलिए दोनों ज्ञान अवस्थित कहलाते हैं। तथा नियमसे मिथ्यात्व और अविरत अवस्थाको प्राप्त नहीं होते हैं इसलिए अप्रतिपाती कहलाते हैं। परमावधि जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट इसतरह तीनों भेदरूप होनेसे वर्धमान है। और वृद्धिके प्रति अनवस्थित भी है हानिके प्रति नहीं। किन्तु सर्वावधि जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट इसतरह तीन भेदरूप नहीं है किन्तु एक विकल्पवाला होनेसे एकभेदरूप ही है। इसलिए न वह वर्धमान है, और न अनवस्थित भी है।

इसप्रकार गुणप्रत्ययअवधिज्ञान देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि इसतरह तीनों प्रकारका होता है। इनमेंसे देशावधिका जघन्य भेद संयमी और असंयमी मनुष्य तथा तिर्यंचोंके ही होता है देवनारकियोंके नहीं। देशावधिका उत्कृष्ट भेद महाव्रती मनुष्योंके ही होता है। क्योंकि इतर तीन गतियोंमें महाव्रतका अभाव होनेसे उन देवादिक तीन गतिवाले जीवोंके देशावधिके उत्कृष्ट भेदका होना संभव ही नहीं है। परमावधि और सर्वावधि ये दोनों ज्ञान चरमशरीरी तथा महाव्रती मनुष्योंके ही होते हैं अन्यके नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन:पर्ययज्ञान— द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिए हुये विना किसीकी सहायताके जो चिंतित, अचिंतित, अर्धचिंतित आदि अनेक भेदरूप दूसरेके मनमें स्थित रूपी[1] अर्थको स्पष्ट जानता है उसको मन:पर्ययज्ञान[2] कहते हैं । यह ज्ञान रूपीपुद्गल द्रव्यकी सम्पूर्ण पर्यायोंको न जानकर कुछ पर्यायोंको जानता है, इसलिए देश कहलाता है । और जितनी पर्यायोंको जानता है उतनी पर्यायोंको इन्द्रिय व मनकी[3] सहायताके विना ही स्पष्टरूपसे प्रत्यक्ष जानता है, इसलिए प्रत्यक्ष कहलाता है ।

मन:पर्ययज्ञानके भेद— ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे मन:पर्ययज्ञान दो प्रकारका है ।

१- जो वर्तमान जीवके द्वारा सरलरूपसे चिंतित, अचिंतित, अर्धचिंतित आदि अनेकभेदरूप त्रिकाल विषयक दूसरेके मनमें स्थित रूपी अर्थको जानता है उसको ऋजुमतिमन:पर्ययज्ञान कहते हैं । इसके सरल मन, वचन तथा कायगत अर्थको विषय करनेकी अपेक्षासे तीन भेद हैं । यह ज्ञान प्रतिपाती[4] तथा अप्रतिपाती[5]

---

१. मन:पर्ययज्ञान रूपी द्रव्यके सम्बन्धसे संसारी जीवको भी जानता है । २- "परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्ययः", अर्थात् दूसरेके मनमें स्थित अर्थको मन कहते हैं । और उस मनको जो जानता है उसको मन:पर्ययज्ञान कहते हैं । ३- पंचाध्यायीकारने मन:पर्ययज्ञानमें भी मनकी सहायता मान करके मन:पर्ययज्ञान मनकी सहायतासे उत्पन्न होता है, इसलिए देश कहलाता है । और शेष इंद्रियोंकी सहायतासे उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए प्रत्यक्ष कहलाता है ऐसा माना है ।

४- उपशमश्रेणीकी अपेक्षा । २- क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस तरह दोनों ही भेदरूप हैं। और निम्नलिखित रूपसे द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षासे रूपी पुद्गल द्रव्यको और रूपी द्रव्यके सम्बन्धसे संसारी जीवको जानता है।

द्रव्यकी अपेक्षा— एक समयमें औदारिक शरीरके जितने परमाणु निर्जीर्ण होते हैं उतने परमाणुओंके स्कन्धको जघन्य ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है। और एकसमयमें औदारिक शरीरगत चक्षुरिन्द्रियके जितने परमाणु निर्जीर्ण होते हैं उतने परमाणुओंके स्कन्धको उत्कृष्ट ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है।

क्षेत्रकी अपेक्षा— ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत जघन्य क्षेत्रका प्रमाण दो तीन कोश है, और उत्कृष्ट क्षेत्रका प्रमाण सात आठ योजन है।

कालकी अपेक्षा— ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत जघन्य कालका प्रमाण दो तनि अतीत और अनागत भव है, तथा उत्कृष्ट कालका प्रमाण सात आठ अतीत और अनागत भव है।

भावकी अपेक्षा— ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत जघन्य भावका प्रमाण आवलीके असंख्यातमे भागके बरावर प्रतिसमयमें होनेवाली रूपी द्रव्यकी अर्थपर्यायोंको जाननेमात्र है, और उत्कृष्ट भावका प्रमाण भी यद्यपि आवलीके असंख्यातमे भागके बरावर प्रतिसमयगत अर्थपर्यायोंको जानने मात्र है तथापि जघन्य भावकी अपेक्षासे असंख्यातगुणा है।

२- जो सरल अथवा कुटिलरूपसे चिंतित, अचिंतित और अर्धचिंतित आदि अनेक भेद रूप त्रिकाल विषयक दूसरेके मनमें स्थित रूपी अर्थको जानता है उसको विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। इसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरल तथा कुटिल मन, वचन और कायगत अर्थको विषयकरनेकी अपेक्षासे छह भेद हैं। यह ज्ञान अप्रतिपाती ही है। तथा निम्नलिखित रूपसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे रूपी द्रव्यको तथा रूपी द्रव्यके सम्बन्धसे संसारी जीवको भी जानता है।

द्रव्यकी अपेक्षा — मनोद्रव्य वर्गणाके जघन्य भेदसे लेकर उत्कृष्ट भेदपर्यंत जितने विकल्प हैं उतनेमें अनन्तका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उस लब्ध एकभागप्रमाण ध्रुवहारका, ऋजुमतिके विषयभूत उत्कृष्ट द्रव्यके प्रमाणमें भाग देनेसे जो कुछ लब्ध आवे उतने परमाणुओंके स्कन्धको जघन्य विपुलमतिमनःपर्यय ज्ञान जानता है। और विस्रसोपचय रहित आठों कर्मोंके समयप्रबद्धके प्रमाणमें एक वार ध्रुवहारका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतने परमाणुओंके स्कन्धको विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानका दूसरा भेद जानता है। तथा असंख्यात कल्पकालके जितने समय होते हैं उतनी वार विपुलमतिके उपर्युक्त दूसरे भेद सम्बन्धी द्रव्यमें ध्रुवहारका भाग देते देते अन्तमें भाग देनेपर जो कुछ लब्ध आवे उतने परमाणुओंके स्कन्धको उत्कृष्ट विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान जानता है।

क्षेत्रकी अपेक्षा— विपुलमति मनःपर्ययज्ञानका विषयभूत जघन्यक्षेत्र आठ नौ योजन प्रमाण है, और उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्य लोक प्रमाण है।

कालकी अपेक्षा— विपुलमति मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत जघन्य कालका प्रमाण आठ नव अतीत और अनागत भव है, तथा उत्कृष्ट कालका प्रमाण पल्यके असंख्यातमे भागमात्र—असंख्यात भागोंमेंसे एक भागमात्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावकी अपेक्षा--- विपुलमति मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत जघन्य भावका प्रमाण ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत जघन्य भावके प्रमाणसे असंख्यात गुणा है, और उत्कृष्ट भावका प्रमाण असंख्यात लोक है।

इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षासे रूपी द्रव्यको और रूपी द्रव्यके सम्बन्धसे संसारी जीवको जाननेवाला यह मनःपर्ययज्ञान मनुष्यलोकमें ही होता है, बाहर नहीं। तथा जिसप्रकार अवधिज्ञान सम्पूर्ण अङ्ग और शंखादिक चिन्होंसे उत्पन्न होता है उसप्रकारसे यह उत्पन्न नहीं होता है। किन्तु द्रव्यमनकी उत्पत्तिकी जगहके आत्मप्रदेशोंमें रहनेवाले मनपर्ययज्ञानावरण तथा वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशम होनेपर प्रमत्तसे लेकर क्षीणकषाय पर्यंत सात गुणस्थानोंमें बुद्धयादिक सात[1] ऋद्धियोंमेंसे एक दो अथवा सातों ऋद्धियोंसे युक्त और वर्धमान विशिष्ट चारित्रवाले मुनियोंके ही होता है दूसरोंके नहीं।

सकलप्रत्यक्षका स्वरूप।

केवलं सकलप्रत्यक्षम्।

अर्थ– केवलज्ञानको सकलप्रत्यक्ष कहते हैं।

भावार्थ— जो हथेलीपर रक्खे हुए आंवलेकी तरह त्रिकालवर्ती सपूर्ण पदार्थोंको युगपत् (एकसाथ) स्पष्ट जानता है उसको केवलज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान जीवद्रव्यके शक्तिरूप संपूर्ण ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके व्यक्तरूप होनेसे संपूर्ण है। ज्ञानावरण तथा वीर्यांतराय कर्मके सर्वथा क्षय होनेके कारण अप्रतिहत शक्तिविशिष्ट और निश्चल होनेसे समग्र है। इंद्रियोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखनेसे असहाय है–केवल है। प्रतिपक्षी

१- १ बुद्धि २ तप ३ वैक्रियक ४ औषध ५ रस ६ बल और ७ अक्षीण इस प्रकार ऋद्धिके सात भेद हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार घातिया कर्मोंके नाश होनेसे क्रम तथा इंद्रियोंके व्यवधानसे रहित होकर संपूर्ण पदार्थोंको जानता है, इस लिए असपत्न (प्रतिपक्षरहित) है । और लोक तथा अलोकके विषयमें अज्ञानरूपी अन्धकारसे रहित है ।

परोक्षप्रमाणके भेद ।

मतिश्रुते परोक्षे ।

अर्थ— मति और श्रुत ये दोनों ज्ञान परोक्ष हैं ।

भावार्थ— जो इंद्रिय, मन, उपदेश तथा प्रकाशादिक दूसरे कारणोंकी सहायतासे पदार्थोंको अस्पष्ट जानता है उसको परोक्ष कहते हैं । इसके दो भेद हैं । एक मतिज्ञान तथा दूसरा श्रुतज्ञान ।

१- जो इंद्रिय और अनिंद्रिय (मन) की सहायतासे अभिमुख तथा नियमित पदार्थको जानता है उसको मतिज्ञान कहते हैं । जैसे 'घटः, इस शब्दके कहनेपर घकार, अकार, टकार, अकार और विसर्जनीय विषयक ज्ञान होना मतिज्ञान कहलाता है । अथवा धूमका देखना मतिज्ञान कहलाता है । इसके अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणा इस प्रकार चार मूलभेद हैं । और तीनसौ छत्तीस उत्तरभेद हैं ।

१- विपय विषयीके योग्यस्थानमें अवस्थित रहने पर सामान्य प्रतिभासरूप दर्शनके बादमें होनेवाले अवान्तर सत्ता विशिष्ट विशेष वस्तुके ज्ञानको अवग्रह कहते हैं । जैसे चक्षुके द्वारा शुक्लरूपका देखना ।

२- अवग्रहके द्वारा जाने हुए पदार्थके विशेषके विषयमें उत्पन्न हुए संशयको दूरकरते हुए अभिलाषस्वरूप ज्ञानको ईहा कहते हैं । जैसे यह शुक्लरूप बलाका ही होना चाहिये अथवा पताका ही । अर्थात् यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बलाका है तो बलाका ही होना चाहिये और यदि पताका है तो पताका ही होना चाहिये । इसप्रकार एक कोटिकी तरफ झुकते हुए विशेष ज्ञानको ही ईहा कहते हैं ।

३- ईहासे जाने हुए पदार्थमें विशेष चिन्होंके द्वारा यह वही है अन्य नहीं है इस प्रकारके मजबूत ज्ञानको अवाय कहते हैं । जैसे यह शुक्लरूप बलाका ही है पताका नहीं ।

४- जिस ज्ञानके द्वारा जाने हुए पदार्थमें कालान्तरमें भी संशय तथा विस्मरण नहीं होवे उसको धारणा कहते हैं । जैसे यह वही बलाका है कि जिसको हमने पहले देखाथा ।

२- मतिज्ञानपूर्वक अर्थसे अर्थांतरके ज्ञानको अर्थात् मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थसे सम्बन्ध लिए हुए किसी दूसरे पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं । जैसे घट शब्द सुननेके बादमें पृथुबुध्नोदरादि आकार विषयक ज्ञान और उससे भी फिर जलधारणादि विषयक ज्ञान होना श्रुतज्ञान कहलाता है अथवा धूमदर्शनसे अग्निका ज्ञान होना और उससे भी फिर दाहपाकादि विषयक विज्ञान होना श्रुतज्ञान कहलाता है ।

इसप्रकार मति और श्रुतज्ञान इंद्रियादिककी सहायतासे पदार्थोंको जानते हैं । और ये दोनों ज्ञान परोक्ष होकरके भी स्वानुभूतिके समय प्रत्यक्ष माने गये हैं अन्य समयमें नहीं ।

प्रमाणके कथनका उपसंहार ।

प्रमाणमुक्तम् ।

अर्थ- इसप्रकारसे प्रमाणके सामान्य और विशेष स्वरूपको कहा ।

नयका स्वरूप ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदवयवाः नयाः ।

अर्थ-- प्रमाणके अंशोंका नाम नय है ।

भावार्थ– वस्तुके एकदेशके ग्रहण करनेवाले–विषय करनेवाले ज्ञानको नय कहते हैं ।

नयभेदा उच्यन्ते ।

अर्थ— अब नयोंके भेदोंको कहते हैं ।

णिच्छयववहारणया मूलमभेया णयाणसव्वाणं ।
णिच्छयसाहणहेओ[1] दव्वयपज्ञत्थिया[2] मुणह ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ– (**णयाणसव्वाणं**) संपूर्ण नयोंके (**णिच्छयववहारणया**) निश्चयनय और व्यवहारनय इस तरह दो (**मूलमभेया**) मूलभेद हैं तथा उन संपूर्ण नयोंमेंसे (**दव्वयपज्ञत्थिया**) द्रव्यार्थिक और पर्यार्थिक ये दोनों नय (**णिच्छयसाहणहेओ मुणह**) निश्चयनयकी सिद्धिमें कारण हैं ऐसा मानना चाहिए-- समझना चाहिये ।

भावार्थ– सामान्यरूपसे संपूर्ण नयोंके दो भेद हैं । १· निश्चयनय २- व्यवहारनय । उनमेंसे निश्चयनयकी सिद्धिके लिए द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक ये दोनों नय कारण हैं ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है ।

निश्चयनयका स्वरूप— जो नय पदार्थके यथार्थ स्वरूपको विषय करता है उसको निश्चयनय कहते हैं ।

१- दूसरी प्रतिमें " णिच्छयसाहणहेऊं ,, ऐसा पाठ है ।
२- दूसरी प्रतिमें " पज्जयदव्वत्थियं ,, ऐसा पाठ है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही ग्रहण करना इसका नाम निश्चयनय[१] है। जैसे- मिट्टीके घडेको मिट्टीका ही घडा कहना अथवा समझना।

व्यवहारनयकास्वरूप—— जो नय पदार्थके अयथार्थ स्वरूपको विषय करता है उसको व्यवहार नय कहते हैं अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा नहीं ग्रहण करना किन्तु दूसरे पदार्थके सम्बन्धसे व्यवहारकी सिद्धिके लिए उस पदार्थको अन्यरूप ग्रहण करना इसका नाम व्यवहारनय[२] है। जैसे—घीके सम्बन्धसे मिट्टीके घडेको घीका घडा कहना। इन दोनों नयोंमेंसे-निश्चय और व्यहारनयमेंसे निश्चयनय द्रव्यको विषय करता है। तथा व्यहवारनय पर्यायको विषय करता है।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयका स्वरूप-- जो नय विशेष स्वरूपके साथ अविनाभावसम्बन्ध रखनेवाले सामान्यरूपको नाना युक्तियोंके बलसे ग्रहण करता है उसको द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। और जो नय सामान्यस्वरूपके साथ अविनाभावसम्बन्ध रखनेवाले विशेष स्वरूपको नाना युक्तियोंके बलसे ग्रहण करता है उसको पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

सारांश यह है कि द्रव्य नाम सामान्यका है। तथा पर्याय नाम विशेषका है। इसलिए वस्तुमें युगपत् रहनेवाले सामान्य और विशेष इन दोनों धर्मोंमेंसे जो नय विशेष धर्मको--पर्यायको गौण करके सामान्य

१- पंचाध्यायीकारने जो नय व्यवहारनयका निषेध करता है उसको निश्चयनय माना है। अर्थात् जो कुछ व्यवहारनय कहता है उसका निषेध करना ही निश्चयननयका लक्षण माना है। २- पंचाध्यायीकारका जितना भी उदाहरणपूर्वक कथन है उस सबको व्यवहारनय माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मको–द्रव्यको मुख्यतासे ग्रहण करता है-विषय करता है उसको द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। तथा जो नय सामान्य धर्मको-द्रव्यको गौण करके विशेष धर्मको-पर्यायको मुख्यतासे विषय करता है उसको पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

अब आगे निश्चयनयके भेदोंको बताते हैं—

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, ऋजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढः, एवंभूत इति नव नयाः स्मृताः।

अर्थ— द्रव्यार्थिकनय पर्यायार्थिकनय, नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय, और एवंभूतनय इसप्रकार परमागममें निश्चयनयके [1] नौं भेद मानेगये हैं।

भावार्थ— निश्चयनयके मूलमें दो भेद हैं---- १ द्रव्यार्थिकनय २ पर्यायार्थिकनय। इन दोनों नयोंमेंसे प्रत्येक नयके अध्यात्म द्रव्यार्थिकनय, शास्त्रीय द्रव्यार्थिकनय, अध्यात्म पर्यायार्थिकनय और शास्त्रीय पर्यायार्थिक नय इस तरह दो २ भेद हैं। इनमेंसे अध्यात्मद्रव्यार्थिक नयके १० भेद हैं। अध्यात्म-पर्यार्थिक नयके ६ भेद हैं। शास्त्रीय द्रव्यार्थिक नयके नैगम, संग्रह तथा व्यवहारके भेदसे ३ भेद हैं।

१- पंचाध्यायीकारने निश्चयनयको एक ही माना है अनेक नहीं। क्योंकि जो पुरुष एक निश्चयनयको शुद्ध द्रव्यार्थिक अशुद्धद्रव्यार्थिक आदि रूपसे अनेक और सोदाहरण मानते हैं वे अज्ञानी, मिथ्यादृष्टी तथा सर्वज्ञकी आज्ञाको उल्लंघन करनेवाले हैं ऐसा स्वयं पंचाध्यायीकारने कहा है। इसलिए उन्होंने शुद्धद्रव्यार्थिक, अशुद्धद्रव्यार्थिक आदि संपूर्ण भेदोंको व्यवहारनयमें ही गर्भित किया है। और उस व्यवहारनयको मिथ्या तथा त्याज्य माना है। केवल एक निश्चयनयको ही यथार्थ और उपादेय माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनमें भी नैगमनयके भूत, भावी और वर्तमान कालके भेदसे ३ भेद हैं। संग्रहनयके सामान्यसंग्रह तथा विशेषसंग्रहके भेदसे २ भेद हैं। व्यवहारनयके सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहार और विशेषसंग्रहभेदकव्यवहारके भेदसे २ भेद हैं। इसतरह शास्त्रीय द्रव्यार्थिकनयके सब मिलकर ७ भेद हो जाते हैं। शास्त्रीयपर्यायार्थिकनयके ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ तथा एवंभूतके भेदसे ४ भेद हैं। इनमें भी ऋजुसूत्रनयके सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूलऋजुसूत्रके भेदसे २ भेद हैं। तथा शब्दादिक शेष तीनों नयोंमेंसे प्रत्येक नयका एक २ ही भेद है। इसतरह शास्त्रीय पर्यायार्थिकनयके सब मिलकर ५ भेद होजाते हैं।

इस प्रकार अभेदविवक्षासे निश्चयनय एक प्रकारका है। सामान्यभेदविवक्षासे द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिकनय इस तरह दो प्रकारका है। तथा विशेष भेदविवक्षासे-अपने २ भेद और प्रभेदोंकी अपेक्षासे अध्यात्मद्रव्यार्थिक नयके १० भेद, अध्यात्मपर्यायार्थिक नयके ६ भेद, शास्त्रीय द्रव्यार्थिक नयके ७ भेद तथा शास्त्रीय पर्यायार्थिक नयके ५ भेद इस तरह २८ प्रकारका है।

उपनयाश्च कथ्यन्ते।

अर्थ— अब उपनयोंका—व्यवहारनयोंका कथन करते हैं।

उपनयका लक्षण।

नयानां समीपा उपनयाः।

अर्थ— जो नयोंके समीपमें रहें उन्हें उपनय कहते हैं।

भावार्थ— जो प्रयोजनवश नयके किसी एक अंशको ग्रहण करके वस्तुका अनेक विकल्परूपसे कथन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है उसको उपनय--व्यवहारनय कहते हैं।

उपनयके भेद।

सद्भूतव्यवहारः, असद्भूतव्यवहारः, उपचरितासद्भूतव्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेधा।

अर्थ- सद्भूतव्यवहारनय, असद्भूतव्यवहारनय और उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय इस तरह उपनय तीन प्रकारका है।

भावार्थ-- उपनयके--व्यवहारनयके मूलमें तीन भेद हैं १ सद्भूतव्यवहारनय २ असद्भूतव्यवहारनय ३ उपचरितअसद्कतव्यवहारनय। इन तीनों नयोंमेंसे सद्भूतव्यवहारनयके दो भेद हैं- १- शुद्धसद्भूतव्यवहारनय २- अशुद्धसद्भूतव्यवहारनय। असद्भूतव्यवहारनयके तीन भेद हैं- १. स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय २. विजात्य-सद्भूतव्यवहारनय ३. स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारनय। तथा इसी प्रकार उपचरितासद्भूतव्यवहारनयके भी तीन भेद हैं १ स्वजात्युपचारेतासद्भूतव्यवहारनय २ विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय ३ स्वजाति-विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय।

इसप्रकार सामान्य भेद विवक्षासे उपनयके-व्यवहारनयके सद्भूतव्यवहारनय, असद्भूतव्यवहारनय और उपचरितासद्भूतव्यवहारनय इसतरह ३ भेद हैं तथा विशेष भेद विवक्षासे अपने २ भेद और प्रभे--दोंकी अपेक्षासे सद्भूतव्यवहारनयके २ भेद असद्भूतव्यवहारनयके ३ भेद तथा उपचरितासद्भूत व्यवहारनयके ३ भेद इसतरह ९ भेद हैं।

इदानीमेतेषां भेदा उच्यन्ते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— अब नय और उपनयोंके—निश्चय तथा व्यवहार इन दोनों नयोंके भेदोंको कहते हैं।

अध्यात्मद्रव्यार्थिकनयके भेद।

द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः।

अर्थ— अध्यात्मद्रव्यार्थिकनयके दश भेद हैं।

भावार्थ— १- कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनय २- सत्ताग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनय ३- भेदकल्पना निरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनय ४- कर्मोपाधिसापेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकनय ५- उत्पादव्ययसापेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकनय ६- भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय ७- अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिकनय ८- स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय ९- परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय और १०- परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय इस तरह अध्यात्मद्रव्यार्थिकनय दश प्रकारका हैं।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका लक्षण।

कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा संसारी जीवः सिद्धसदृक् शुद्धात्मा[1]।

अर्थ— जो नय कर्मोंके बन्धसे संयुक्त संसारी जीवको सिद्धके समान शुद्ध ग्रहण करता है अर्थात् जो कर्मकृत उपाधिकी अपेक्षा नहीं करके केवल द्रव्यके शुद्धस्वरूपको विषय करता है उसको कर्मोपाधि निरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जैसे संसारी जीवको मुक्तजीवके समान शुद्ध ग्रहण करना

---

१ कम्माणं मज्झगयं जीवं जो गहइ सिद्धसंकासं। पणइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहिणिरवेक्खो॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पाद और व्ययको गौण करके सत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिक नयका लक्षण ।

उत्पादव्ययगौणत्वेन[१] सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा- द्रव्यं नित्यम् ।

अर्थ– जो नय, उत्पाद और व्यय इन दोनोंको गौण करके केवल सामान्य सत्ताको ही विषय करता है उसको सत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं । जैसे द्रव्यको नित्य ग्रहण करना ।

भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनयका लक्षण ।

भेदकल्पनानिरपेक्षः[२] शुद्धद्रव्यार्थिको यथा- निजगुणपर्यायस्वभावाद्द्रव्यमभिन्नम् ।

अर्थ– गुणगुणी और पर्यायपर्यायीमें भेद न करके जो नय द्रव्यको अपने गुणों तथा पर्यायोंसे अभिन्न ग्रहण करता है उसको भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं । जैसे द्रव्य अपने गुण, स्वभाव और पर्यायोंसे अभिन्न है ऐसा ग्रहण करना ।

कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक नयका लक्षण ।

[३]कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः यथा- कर्मोपाधिजभाव आत्मा ।

अर्थ--- जो नय कर्मकृत उपाधिकी अपेक्षा करके द्रव्यके स्वरूपको विषय करता है अर्थात् जो जीवमें क्रोधादिक भावोंको ग्रहण करता है उसको कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहते हैं जैसे--कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होनेवाले क्रोधादिकभावोंकी अपेक्षासे जीवको मानी, मायावी, लोभी, द्वेषी,

---

१- उप्पादवयं गौणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता । भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहओ समए ॥

२- गुणगुणियाइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं । सुद्धो सो दव्वत्थो भेदवियप्पेण णिरवेक्खो ॥

३- भावेसुरायमादी सव्वे जीवंमि जो दु जंपेदि । सो हु असुद्धो उत्तो कम्माणोवाहि सावेक्खो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोही आदि रूपसे ग्रहण करना ।

उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनयका लक्षण ।

[१] उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा- एकस्मिन्समये उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् ।

अर्थ-- जो नय उत्पादव्ययसे मिली हुइ—उत्पाद और व्ययकी अपेक्षा रखनेवाली सत्ताको ग्रहण करके एक ही समयमें द्रव्यके त्रितयपनेको ग्रहण करता है उसको उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं । जैसे- एक ही समयमें द्रव्यको उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यात्मक कहना ।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयका लक्षण ।

[२] भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा- आत्मनो ज्ञानदर्शनादयो गुणाः (भिन्नाः)[३]

अर्थ— गुणगुणी और पर्याय पर्यायीमें भेद करके जो नय द्रव्यको गुणगुणी आदि भेदरूपसे ग्रहण करता है उसको भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक नय कहते हैं । जैसे आत्मासे दर्शन ज्ञान आदि गुण भिन्न हैं ऐसा ग्रहण करना । अथवा ज्ञानदर्शनादिक गुणोंसे आत्मा भिन्न है ऐसा ग्रहण करना ।

अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नयका लक्षण ।

१- उप्पादवयविमिस्सत्ता गहिऊग मणइतिदयत्तं । दव्वस्स एकसमये जो हु असुद्धो हवे विदिओ ।

२- भेदे सदि संबंध गुणगुणियाईण कुणइ जो दव्वे । सो वि असुद्धो दिट्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ।

३- मूल पुस्तकमें " भिन्नाः,, यहपद नहीं है । परन्तु इस नयके लक्षणमें " भिन्नाः,, इसपदके रखनेसे अर्थका स्पष्टीकरण हो जाता है इसलिये " भिन्नाः' यहपद कोंसमें रख दिया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[१] **अन्वयसापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा- गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यं ।**

अर्थ— जो नय उस द्रव्यके संपूर्ण गुण, पर्याय और स्वभावोंमें द्रव्यको अन्वयरूपसे ग्रहण करता है उसको अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जैसे मनुष्य, देव आदि नाना पर्यायोंमें जीव ऐसा ग्रहण करना ।

स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयका लक्षण ।

[२] **स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा- स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति ।**

अर्थ— जो नय स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षासे द्रव्यको सत्‌रूप ग्रहण करता है उसको स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जैसे—स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्यको सत्-रूप—आस्तिरूप कहना अर्थात् सुवर्णको सुवर्णरूपसे, सुवर्णक्षेत्रसे सुवर्णकालसे और सुवर्णपर्यायसे आस्तिरूप ग्रहण करना ।

परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयका लक्षण ।

परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति ।

अर्थ— जो नय परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल तथा परभावकी अपेक्षासे द्रव्यको असत्‌रूप ग्रहण करता है उसको परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जैसे परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे

१- णिस्सेसस्सहावाणं अण्णयरूवेण दव्वदव्वेदि । दव्वठवणो हि जो सो अण्णयदव्वीत्थओ भणिओ ।

२- सद्दव्वादिचउक्के संतं दव्वंखु गिह्णए जो हु । णियदव्वादिसु गाही सो इयरो होइ विवरीयो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यको असत्रूप--नास्तिरूप ग्रहण करना अर्थात् सुवर्णको रजतरूपसे, रजतक्षेत्रसे, रजतकालसे और रजतपर्यायसे नास्तिरूप ग्रहण करना।

परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयका लक्षण।

परमभावग्राहकद्रव्यार्थिको यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा।

अर्थ---- जो नय शुद्ध और अशुद्ध उपचारसे रहित द्रव्यके अनेक स्वभावोंमेंसे किसी एक परमस्वभावको -मुख्यस्वभावको ग्रहण करता है उसको परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जैसे जीवमें अनेक स्वभावोंके रहते हुए भी परमभाव ज्ञानकी मुख्यताकी अपेक्षासे जीवको ज्ञानस्वरूप कहना।

अत्रानेकस्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः।

अर्थ--- यहांपर परमभावग्राहकद्रव्यार्थिकनयमें जबिके अनेक स्वभावोमेंसे ज्ञाननामक परमस्वभावका ही ग्रहण किया गया हैं।

इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः।

अर्थ---- इसप्रकार अध्यात्म द्रव्यार्थिकनयके १० भेदोंका निरूपण किया।

अथ पर्यायार्थिकस्य षड्भेदा उच्यते।

अर्थ--- अब अध्यात्म पर्यायार्थिक नयके छह भेदोंका निरूपण करते हैं।

भावार्थ--- १ अनादि नित्यपर्यायार्थिकनय २ सादिनित्यपर्यायार्थिकनय ३ उत्पादद्रव्यग्राहकस्वभाव-

---

१- गिण्हइ दव्वसहावं असुद्धसुद्धोपचारपरिचत्तो सो परमभावगाही णायव्वो सिद्धिकामेण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनय ४ सत्तासापेक्षस्वभावअनित्यअशुद्धपर्यायार्थिकनय ५ कर्मोपाधिनरपेक्षस्वभावअनित्य शुद्धपर्यायार्थिकनय और ६ कर्मोपाधिसापेक्षविभावअनित्यअशुद्धपर्यायार्थिकनय इसतरह अध्यात्म पर्यायार्थिक नयके ६ भेद हैं ।

अनादि नित्य पर्यायार्थिकनयका लक्षण ।

अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा [1]पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वादिः ।

अर्थ— जो नय स्थूल आकारादिककी अपेक्षासे द्रव्यकी अकृत्रिम और अनिधन–अनादि और नित्य मेरु तथा चन्द्र सूर्यआदि पर्यायोंको ग्रहण करता है उसको अनादिनित्यपर्यायार्थिकनय कहते हैं । जैसे मेरु और चन्द्र सूर्यादिकको पुद्गल द्रव्यकी अनादिनित्यपर्यायरूपसे ग्रहण करना । यद्यपि इन चन्द्र सूर्यादिक स्थूल पर्यायोंमें भी संख्यात असंख्यात आदि परमाणुओंके आने जानेसे प्रतिसमय सूक्ष्म परि–णमन होता रहता है, तथापि इनकी स्थूलपर्याय अर्थात् आकारादिक सदैव एकसाही बना रहता है--- जैसा है वैसाही बना रहता है । उसमें कुछ भी हीनाधिकरूपसे अन्तर नहीं पडता है । इसलिए इनको–मेरु तथा चन्द्र सूर्यादिकको पुद्गल द्रव्यकी अनादिनित्य पर्याय कहते हैं । अर्थात् मेरु वगैरहको किसीके द्वारा किये नहीं जानेकी अपेक्षासे अनादि कहते हैं । और कभी भी नष्ट नहीं होनेकी अपेक्षासे नित्य कहते हैं ।

सादि नित्य पर्यायार्थिक नयका लक्षण ।

१- अकट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया गिहृणइ । जो सो अणाइणिच्चो जिणभणिओ पज्जयत्थिणओ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा- [१]सिद्धजीवपर्यायो हि सादिनित्यः ।

अर्थ— जो नय, कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाली और अपने विनाशके कारणोंके अभावसे अविनाशी द्रव्यकी सादि तथा नित्य पर्यायको ग्रहण करता है उसको सादि नित्य पर्यायार्थिकनय कहते हैं। जैसे–जीवकी सिद्ध पर्याय, यह सिद्ध पर्याय अनादिकालसे जिनका आत्माके साथ सम्बन्ध होरहा है ऐसे कर्मोंसे अभावसे उत्पन्न होती है इसलिए इसको सादि कहते हैं और उत्पन्न होनेपर अक्षय अनन्त होनेके करण फिर कभी नष्ट नहीं होती है इसलिए इसको नित्य कहते हैं।

उत्पादव्ययग्राहकस्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनयका लक्षण ।

सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावानित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा-[२]समयं समयंप्रति पर्याया [३]उत्पाद विनाशिनः ।

अर्थ–– जो नय सत्ताको-ध्रौव्यको गौण करके केवल द्रव्यके उत्पाद व्ययस्वभावको–द्रव्यको उत्पाद व्ययरूप पर्यायको ग्रहण करता है उसको उत्पाद व्ययग्राहकस्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते हैं। जैसे–पर्यायें प्रतिसमयमें उत्पन्न और विनष्ट होती हैं।

१- कम्मक्खयादु पत्तो अविणासी जो हु कारणाभावे । इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्चणओ ॥

२- सत्ता अमुक्खरूवे उप्पादवयं हि गिह्णए जो दु । सो दु सहाव अणिच्चो भण्णइ खलु सुद्धपज्जाओ ।

३- मूल प्रतिमें ' उत्पाद शब्द नहीं है, परन्तु इस नयके लक्षणमें उसका होना आवश्यक समझकर हमने मूल पाठमें ' उत्पाद , इस शब्दको और जोड दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्तासापेक्षस्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनयका लक्षण ।

सत्तासापेक्षस्वभावानित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा-एकस्मिन्समये त्रयात्मकः पर्यायः[1] ।

अर्थ— जो नय सत्ताकी—ध्रौव्यकी अपेक्षा सहित उत्पाद व्यय स्वभावको ग्रहण करता है अर्थात् एक ही समयमें पर्यायको उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभावसे युक्त ग्रहण करता है उसको सत्ता-सापेक्षस्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते हैं। जैसे—एकही समयमें पर्याय उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्यरूप है अर्थात् उत्तर पर्यायके उत्पादसे उत्पादरूप, पूर्व पर्यायके विनाशसे व्ययरूप और द्रव्यपनेसे ध्रौव्यरूप है।

कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनयका लक्षण ।

कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावानित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः[2] ।

अर्थ— जो नय, कर्मकृत उपाधिकी अपेक्षा नहीं करके संसारी जीवोंकी पर्यायोंको सिद्ध पर्यायके समान शुद्ध ग्रहण करता है उसको कर्मोपाधिनिरपेक्ष स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते हैं। जैसे— संसारी जीवोंकी पर्यायें सिद्ध पर्यायके समान शुद्ध हैं।

कर्मोपाधिसापेक्ष विभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनयका लक्षण ।

१- जो गहइ एक्कसमए उप्पायवयधुवत्तसंजुत्तं । सो सब्भाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थीओ ॥

२- देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाण भणइ सारित्था । जो इह अणिच्च सुद्धो पज्जयगाही हवे स णओ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मोपाधिसापेक्ष [१]विभावानित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा— संसारिणामुत्पत्तिमरणे स्तः[२] ।

अर्थ— जो नय कर्मकृत उपाधिकी अपेक्षा करके संसारी जीवोंकी चतुर्गतिसम्बन्धी अनित्य तथा अशुद्ध पर्यायको ग्रहण करता है उसको कर्मोपाधिसापेक्षविभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते हैं। जैसे संसारी जीवोंका जन्म तथा मरण होता है।

इति पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ।

अर्थ— इस प्रकार अध्यात्मपर्यायार्थिकनयके छह भेदोंका निरूपण किया।

अब आगे शास्त्रीय द्रव्यार्थिकनयके नैगम, संग्रह और व्यवहार इन तीनों भेदोंके स्वरूपका निरूपण करते हैं।

नैगमनयका स्वरूप— जो नय अतीत, अनागत तथा वर्तमानकाल संबंधी वस्तुके संकल्पमात्रको विषय करता है उसको नैगमनय[३] कहते हैं। अथवा[४] जो नय धर्म और धर्मीमें किसी एकको गौण और दूसरेको मुख्य करके भेद अथवा अभेदको विषय करता है उसको नैगमनय कहते हैं।

संग्रहनयका स्वरूप— जो नय प्रत्यक्ष और अनुमानसे किसी भी तरह अपनी जातिका विरोध नहीं

१-मूल प्रतिमें 'स्वभाव, पाठ है। परन्तु वह इस नयके लक्षणके अनुसार अशुद्ध है, इसलिए स्वभावकी जगह विभाव करदिया है। नयचक्रसे भी यही प्रतीत होता है। देखो टिप्पणी नं. २।

२- भणइ अणिच्चाऽसुद्धा चउगइजीवाण पज्जया जो हु। होइ विभाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयात्थणओ॥

३- अर्थसंकल्पमात्रग्राही नैगमः। ४- अन्योन्यगुणप्रधानभूतभेदाभेदप्ररूपको नैगमः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके पर्यायोंसे युक्त अनेक भेदोंको एकत्वरूपसे ग्रहण करता है उसको संग्रह[1] नय कहते हैं।

व्यवहार नयका स्वरूप– जो नय संग्रहनयके विषयभूत-संगहनयसे ग्रहण किये हुए पदार्थोंके, विधिपूर्वक भेद करके संग्रहनयकी अनुपूर्वीसे-भेदसे ग्रहण करता है उसको व्यवहार[2] नय कहते हैं।

नैगमनयके भेद।

नैगमस्त्रेधाभूतभाविवर्तमानकालभेदात्।

अर्थ– भूत, भावि और वर्तमान कालके भेदसे नैगमनय तीन प्रकारका है।

भावार्थ-- नैगमनयके तीन[3] भेद है-१भूत नैगमनय २ भावी नैगमनय ३ वर्तमान नैगमनय।

भूतनैगम नयका लक्षण।

अतीते वर्तमानारोपणं यत्र स भूतनैगमो यथा-- अद्य दीपोत्सवदिने श्री वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः।

अर्थ– जहांपर अतीतमें वर्तमानका आरोपण किया जाता है उसको, अर्थात् जो नय भूत

१- एकत्वेन विशेषाणां ग्रहणं संग्रहो नयः। स्वजातेरविरोधेन दृष्टेष्टाभ्यां कथंचन॥

२- संग्रहेण गृहीतानामर्थानां विधिपूर्वकः। यो व्यवहारो विभागः स्याद्व्यवहारो नयः स्मृतः॥

३- किसी किसीने अतीतवर्तमान, वर्तमानातीत, अनागतवर्तमान, वर्तमानानागत, अनागतातीत और अतीतानागत इस तरह नैगमनयके छह भेद माने हैं, परन्तु ये सव भेद नैगमनयके भूत भावि आदि उक्त तीनों भेदोंमें ही गर्भित होजाते हैं। श्लोकवार्तिककारने द्रव्यनैगम पर्यायनैगम आदि रूपसे नैगमनयके ९ भेद माने हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालसम्बन्धी पर्यायको वर्तमानकालमें आरोपण करके–सङ्कल्प करके कहता है उसको भूतनैगमनय कहते हैं। जैसे—आज दीपोत्सवके दिन ही-दिवालीके दिन ही श्रीमहावीर भगवान मोक्षको गये थे।

यद्यपि यहांपर 'आज, शब्दका अर्थ वर्तमान दिवस है, परन्तु हजारों वर्ष पहलेके दीपमालिकासम्बन्धी दिनमें उसका सङ्कल्प किया गया है। अतःयह भूतनैगमनय कहलाता है।

भाविनैगमनयका लक्षण।

भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भाविनैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव

अर्थ— जहांपर अनागतमें अतीत कालके समान आरोपण किया जाता है अर्थात् जो नय आगामी कालमें होनेवाली पर्यायको अतीत कालकी पर्यायके समान कहता है उसको भाविनैगमनय कहते हैं। जैसे-अरहन्त सिद्धही हैं।

यहांपर आगामी कालमें होनेवाली पर्यायमें भूत कालकी पर्यायके समान सङ्कल्प कियागया है। अतः यह भाविनैगमनय कहलाता है।

वर्तमान नैगमनयका लक्षण।

कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा–ओदनः पच्यते।

अर्थ— जो नय करनेके लिए प्रारम्भ की गई ऐसी ईषत् निष्पन्न (थोडी बनी हुई) अथवा अनिष्पन्न (बिल कुल नहीं बनी हुई) वस्तुको निष्पन्नकी तरह (बनी हुईकी तरह) कहता है उसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान नैगमनय कहते हैं। तात्पर्य यह है कि शुरू कर दिये गये किसी कार्यको, उस कार्यके पूर्ण नहीं होनेपर भी पूर्ण हुआ कह देना वर्तमान नैगमनय है। जैसे-रसोईघरमें चावल, लकडी, पानी आदि भात बनानेकी सामग्रीको इकट्ठी करनेके समय ही भात बनारहा हूं ऐसा कहना, अर्थात् कोई पुरुष रसोई घरमें चांवल आदि भात बनानेकी सामग्री इकट्ठी कररहा था, इतनेमें किसीने आकर पूछा कि कहिये महाशय! क्या बनारहे हैं तब उसने कहा कि भात बना रहा हूं।

यहांपर चांवल आदि भात बनानेकी सामग्रीमें भातका संकल्प किया गया है। अथवा चांवल और भातमें अभेद विवक्षा है।

इति नैगमस्त्रधा।

अर्थ– इसप्रकार नैगमनयके तीनों भेदोंका निरूपण किया।

संग्रहनयके भेद।

संग्रहो द्विविधः।

अर्थ– संग्रहनय दो प्रकारका है। एक सामान्यसंग्रहनय और दूसरा विशेषसंग्रहनय।

सामान्यसंग्रहनयका लक्षण।

सामान्यसंग्रहो यथा-सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि।

अर्थ— जो नय सत् सामान्यकी अपेक्षासे सम्पूर्ण द्रव्योंको एकरूप ग्रहण करता है उसको सामान्यसंग्रहनय कहते हैं। जैसे सत्सामान्यकी अपेक्षासे सम्पूर्ण द्रव्य परस्परमें अविरोधी हैं-एक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहांपर द्रव्यके कहनेसे सामान्यतया जीव और अजीव सबका ग्रहण हो जाता है, इसलिए यह सामान्य संग्रहनय कहलाता है ।

विशेष संग्रहनयका लक्षण ।

विशेषसंग्रहो यथा– सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः ।

अर्थ— जो नय एकजातिविशेषकी अपेक्षासे अनेक पदार्थोंका एकरूप ग्रहण करता है उसको विशेषसंग्रहनय कहते हैं । जैसे– चैतन्यपनेकी अपेक्षासे संपूर्ण जीव परस्परमें अविरोधी हैं-एक हैं । यहांपर जीवके कहनेसे सामान्यतया सब जीवोंका तो ग्रहण होजाता है, परन्तु अजीवका ग्रहण नहीं होता है इसलिए यह विशेष संग्रहनय कहलाता है ।

इति संग्रहोऽपि द्विधा ।

अर्थ– इस प्रकार संग्रहनयके भी दोनों भेदोंका वर्णन किया ।

व्यवहारनयके भेद ।

व्यवहारोऽपि द्विधा ।

अर्थ— व्यवहारनय भी दो प्रकारका है ।

भावार्थ— जिसप्रकार संग्रहनयके दो भेद हैं । उसीप्रकार उस संग्रहनयके विषयमें भेदकरनेवाले व्यवहारनयके भी दो भेद हैं । एक सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहारनय और दूसरा विशेषसंग्रहभेदकव्यवहारनय ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहारनयका लक्षण ।

सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा-द्रव्याणि जीवाजीवाः ।

अर्थ—जो नय, सामान्यसंग्रहनयके विषयभूत पदार्थको भेदरूप ग्रहण करता है-भेदरूपसे विषय करता है, अर्थात् सामान्यसंग्रहनयके विषयभूत पदार्थमें भेदको करता है उसको सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहारनय कहते हैं। जैसे- द्रव्योंके दो भेद हैं एक जीव और दूसरा अजीव।

विशेषसंग्रहभेदक व्यवहारनयका लक्षण ।

विशेषसंग्रहभेदको व्यवहरो यथा- जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च ।

अर्थ- जो नय, विशेषसंग्रहनयके विषयभूत पदार्थको भेदरूप ग्रहण करता है-भेदरूपसे विषय करता है उसको विशेषसंग्रहभेदकव्यवहारनय कहते हैं। जैसे--जीवोंके दो भेद हैं एक संसारी जीव और दूसरा मुक्तजीव।

उक्त कथनका सारांश यह है कि सामान्यसंग्रहनय सत्को विषय करता है, परन्तु व्यवहारनय उसमें भेद करता है कि जो सत् है वह द्रव्य और पर्यायके भेदसे दो प्रकारका हैं। विशेषसंग्रहनय सत्पनेकी अपेक्षासे सम्पूर्ण द्रव्योंको एक द्रव्यरूप और सम्पूर्ण पर्यायोंको एक पर्यायरूप ग्रहण करता है, परन्तु व्यवहारनय उसमें भेद करता है कि जो द्रव्य है वह जीव तथा अजीवके भेदसे दो प्रकारका है। जो पर्याय है वह क्रमभावी और सहभावीके भेदसे दो प्रकारकी हैं। संग्रहनय चैतन्यपनेकी अपेक्षासे सम्पूर्ण जीवोंको एक जीवरूप ग्रहण करता है। मूर्तत्व आदिकी अपेक्षासे सम्पूर्ण पुद्गलादिकोंको एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुद्गलादिरूप ग्रहण करता है। तथा क्रमभावी पर्यायोंको क्रमभावी पर्यायरूप और सहभावी पर्यायोंको सहभावी पर्यायरूप ग्रहण करता है। परन्तु व्यवहारनय उसमें भेद करता है कि जो जीव हैं, वे मुक्त तथा संसारीके भेदसे दो प्रकारके हैं। जो पुद्गल है वह अणु और स्कन्धके भेदसे दो प्रकारका है। जो धर्मास्तिकाय है वह जीव तथा पुद्गल इन दोनोंकी गतिमें हेतु होनेसे दो भेदरूप है। जो अधर्मास्तिकाय है वह जीव और पुद्गल इन दोनोंकी स्थितिमें हेतु होनेसे दो भेदरूप है। जो आकाश है वह लोकाकाश तथा अलोकाकाशके भेदसे दो प्रकारका है। जो काल है वह निश्चयकाल और व्यवहारकालके भेदसे दो तरहका है। जो क्रमभावी पर्याय है वह क्रिया रूप तथा अक्रियारूप है। जो सहभावी पर्याय है वह विशेष अथवा गुणरूप है इत्यादि, तात्पर्य यह है कि जबतक भेदका अन्त नहीं होता है तबतक बराबर संग्रहनयके विषयमें व्यवहारनयकी प्रवृति होती रहती है।

इसप्रकार इस सामान्य और विशेष व्यवहारनयका प्रपंच सामान्यसंग्रहनयसे आगे और ऋजुसूत्र नयके पहले तक समझना चाहिये। क्योंकि सबही पदार्थ कथंचित् सामान्यविशेषात्मक होते हैं।

इति व्यवहारोऽपि द्विधा।

अर्थ—इसतरह व्यवहारनयके भी दोनों भेदोंका निरूपण किया।

अबआगे– शास्त्रिय पर्यायार्थिकनयके ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इनचारों भेदोंके स्वरूपको कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/éGangotri

ऋजुसूत्रनयका स्वरूप--- जो नय अतीत अनागत कालसम्बन्धी पर्यायकी अपेक्षा न करके केवल वर्तमानकालसम्बन्धी पर्यायको विषय करता है उसको ऋजुसूत्रनय कहते हैं।

ऋजुसूत्रनयके भेद।

ऋजुसूत्रो द्विविधः।

अर्थ— ऋजुसूत्रनय दो प्रकारका है। एक सूक्ष्मऋजुसूत्रनय और दूसरा स्थूलऋजुसूत्रनय।

सूक्ष्मऋजुसूत्रनयका लक्षण।

सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा-एकसमयस्थायी पर्यायः।

भावार्थ----जो नय, द्रव्यकी एक समयवर्ती सूक्ष्म अर्थपर्यायको विषय करता है उसको सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय कहते हैं।

स्थूल ऋजुसूत्रनयका लक्षण।

स्थूलर्जुसूत्रो यथा-मनुष्यादिपर्यायास्तदायुःप्रमाणकालं तिष्ठन्ति।

अर्थ--- जो नय द्रव्यकी अनेक समयवर्ती स्थूल पर्यायको विषय करता है उसको स्थूल ऋजुसूत्रनय कहते हैं। जैसे-- मनुष्य तिर्यंच आदि पर्यायें अपनी २ आयुके प्रमाणके कालतक अर्थात् अपनी २ आयु पर्यन्त रहती हैं।

इति ऋजुसूत्रोऽपि द्विधा।

अर्थ-- इसप्रकार ऋजुसूत्रनयके भी दोनों भेदोंका निरूपण किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब आगे शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन तीनों नयोंके भेदोंको कहते हैं।

शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैके नयाः ।

अर्थ— शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन तीनों नयोंमेंसे प्रत्येक नय एक २ प्रकारका है अर्थात् शब्द नय एक प्रकारका है, समभिरूढनय एक प्रकारका है तथा एवंभूतनय एक प्रकारका है।

शब्दनयका लक्षण।

शब्दनयो यथा दारा भार्या कलत्रं, जलं आपः ।

अर्थ— जो नय, पर्यायवाची शब्दोंमें लिंग, संख्या, कारक, साधन, काल और उपसर्गादिकके भेदसे पदार्थको भेदरूप ग्रहण करता है उसको शब्दनय[1] कहते हैं। जैसे दारा, भार्या तथा कलत्र ये तीनों भिन्न २ लिंगके शब्द यद्यपि एक स्त्रीरूप पदार्थके ही वाचक हैं, परन्तु यह नय लिंगका भेद होनेसे एक स्त्री पदार्थको तीन भेदरूप ग्रहण करता है। इसीतरह 'जलं आपः, ये दोनों भिन्न २ संख्याके शब्द यद्यपि एक पानीरूप अर्थके ही वाचक हैं, परन्तु यह नय संख्याका भेद होनेसे एक पानीरूप अर्थको दो भेदरूप ग्रहण करता है। इसी

१- कालादिभेदतोऽर्थस्य भेदं यः प्रतिपादयेत् । सोऽत्र शब्दनयः शब्दप्रधानत्वादुदाहृतः ॥ (श्लोकवार्तिक) सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक तथा नयचक्रकारने इस नयका लक्षण इसप्रकार लिखा है–

'लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दः, स., रा. वा.; जो नय लिङ्ग, संख्या, साधन आदिके व्याभिचारकी निवृतिमें तत्पर रहता है अर्थात् लिङ्गादिकके व्यभिचारको दूरकरके पदार्थका कथन करता है उसको शब्दनय कहते हैं।

'जो वट्टणं ण मण्णइ एयत्थे भिण्णलिंगआईणं । सो सद्दणओ भणिओ णेओ पुस्साइयाण जहा, न. च.

जो नय एक पदार्थमें भिन्न लिङ्गादिककी स्थितिको नहीं मानता है उसको शब्दनय कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार कारकादिकके दृष्टांत भी समझलेना चाहिये ।

सारांश यह है कि शब्दनय लिंगादिकके व्यभिचारको ठीक नहीं मानता है, क्योंकि अन्य पदार्थका अन्य पदार्थके साथ सम्बन्ध नहीं होता है। यदि अन्य पदार्थका अन्य पदार्थके साथ भी सम्बन्ध होने लगे तो घट, पट होजायगा और पट, मकान होजायगा। अतः समान लिंग समान संख्या आदिवाले पर्यायवाची शब्दोंके परस्परमें सम्बन्धको ही शब्दनय ठीक मानता है।

यद्यपि व्यवहारनय अथवा व्याकरणशास्त्रसे लिंगादिकका भेद होनेपर भी पदार्थमें भेद नहीं मानना ठीक है, परंतु शब्दनयकी अपेक्षासे लिंगादिकका भेद होनेपर भी पदार्थमें भेद नहीं मानना–पदार्थको एक मानना ठीक नहीं है। श्लोकवार्तिककारने तो इस विषयमें बहुत ही ऊहापोहके साथ विचार किया है, अतः पाठकोंकी जानकारीके लिये उनके मतका भी यहांपर संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है–

"जो वैयाकरण व्यवहारनयका अनुसरण करके 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः, इस सूत्रको लेकर 'विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो[1] जनिता [2]भाविकृत्यमासीत्, यहांपर कालके भेदमें भी वैसा व्यवहार देखा जानेसे अर्थमें अभेद मानते हैं-पदार्थको एक मानते हैं परंतु इस नयकी दृष्टिसे यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि यदि कालका भेद रहने पर भी अर्थमें भेद नहीं माना जायगा-पदार्थोंको एक माना जायगा तो अतीत और अनागत काल सम्बन्धी रावण और शंख चक्रवर्ती

१- जिसने समस्त लोकको देख लिया है ऐसा इसके पुत्र उत्पन्न होगा।
२- आगे होनेवाला कार्य हो गया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनदोनोंमें भी एकत्वकी आपत्ति आवेगी अर्थात् ये दोनोंभी एकहो जावेंगे। तथा 'यदि [1]करोति [2]क्रियते, यहांपर कर्त्ता और कर्म कारकके भेदमें अर्थमें अभेद माना जायगा तो 'देवदत्तः कटं करोति, यहांपर भी कर्त्ता कर्म कारक रूप देवदत्त और कट इनदोनोंमें अभेदका प्रसंग आवेगा अर्थात् ये दोनों एक होजावेंगे। तथा यदि 'पुष्यः तारका, यहांपर लिंगका भेद रहनेपर भी अर्थमें अभेद माना जायगा तो 'पटः कुटी, यहांपर भी पट और कुटी ये दोनों एक होजावेंगे। तथा यदि 'आपः अम्भः, यहांपर संख्याका भेद रहनेपर भी अर्थमें अभेद माना जायगा– भेद नहीं माना जायगा तो 'घटः संस्तवाः, अथवा 'आम्राः वनं, यहांपर भी एकत्व होजावेगा। तथा यदि 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता, यहांपर साधनके भेदमें भी-अर्थमें अभेद माना जायगा तो '.अहं पचामि त्वं पचसि, यहांपर भी युष्मद् अस्मद्रूप साधनके भेदमें एकार्थत्वका प्रसंग आवेगा। तथा यदि 'संतिष्ठते अवतिष्ठते, यहांपर उपसर्गका भेद रहनेपर भी अर्थमें अभेद माना जायगा तो 'तिष्ठति प्रतिष्ठते, यहांपर भी स्थिति और गति इन दोनों क्रियाओंमें अभेद होजावेगा। अतः कालादिकके भेदसे अर्थमें भी भेद मानना चाहिये। अन्यथा अतिप्रसंग नामका दोष आता है,,।

इस प्रकार कालादिकके भेदसे भी पदार्थमें भेद नहीं माननेसे जो दूषण आते हैं उनका यहांपर संक्षेपमें ही उल्लेख किया गया है जिनको इस विषयमें विशेष जाननेकी इच्छा हो वे श्लोकवार्तिकको देखें।

समभिरूढनयका लक्षण।

१- 'करोति, यहांपर कर्त्ता में प्रत्यय है।
२- 'क्रियते, यहांपर कर्म में प्रत्यय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समभिरूढनयो यथा- गौः पशुः ।

अर्थ– जो नय एक शब्दके नाना अर्थोंको छोड कर मुख्यतासे किसी एक अर्थमें ही आरूढ होता है अर्थात् किसी एक रूढ अर्थको ही-प्रसिद्ध अर्थको ही ग्रहण करके उस पदार्थको सब अवस्थाओंमें उसी शब्दसे कहता है उसको समभिरूढनय कहते हैं । जैसे- गौ इस शब्दके वाणी, पृथ्वी, गमन आदि अनेक अर्थ ह परन्तु यह नय उन सब अर्थोंको छोड करके केवल पशुविशेष (गौ) रूप अर्थको ही ग्रहण करता है । यद्यपि गच्छतीति गौः , इस व्युत्पत्तिकी अपेक्षासे जो गमन करै वह गौ है ऐसा गौ शब्दका यौगिक-- धात्वर्थनिष्पन्न अर्थ होता है । तथापि यह नय गमनक्रियासे भिन्न उठने, बैठने सोने आदि अन्य क्रियाओंके समयमें भी गौको गौ शब्दसे कहता है । क्योंकि गौ शब्दका रूढ अर्थ–प्रसिद्ध अर्थ सामान्य गाय (गौ) ही होता है ।

अथवा जो नय लिङ्गवचन आदिका भेद न होनेपर भी पर्यायवाची शब्दोंके भेदसे पदार्थको भेदरूप ग्रहण करता है उसको समभिरूढ नय कहते हैं । जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर ये तीनों एकही लिङ्गके पर्यायवाची शब्द एक देवपति (देवोंके स्वामी) रूप अर्थके ही वाचक हैं, परन्तु यह नय पर्यायवाची शब्दोंके भेदसे एक देवपतिको-देवोंके स्वामीको तीन भेदरूप ग्रहण करता है अर्थात् इन्दन क्रियाकी अपेक्षासे--परमैश्वर्योपभोगरूप क्रियाकी अपेक्षासे इन्द्ररूप, शकन क्रियाकी अपेक्षासे--सर्वाधिक सामर्थ्यरूप क्रियाकी अपेक्षासे शक्ररूप और पूर्दारण क्रियाकी अपेक्षासे पुरन्दररूप ग्रहण करता है ।

शब्दनय और इस नयमें इतना अन्तर है कि शब्दनय तो लिंग, संख्या, कारक आदिके भेदसे होनेवाले शब्दभेदसे ही पदार्थको भेदरूपग्रहण करता है अर्थात् शब्दके होनेवाले लिंगादिकके भेदमें ही अर्थभेदको करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है । "क्रियते विधीयते, करोति विदधाति, आपः वाः, अम्भः सलिलं, इन्द्रः शक्रः,, इत्यादि पर्यायवाची शब्दोंके भेदमें अर्थभेदको नहीं करता है । किन्तु यह नय पर्यायवाची शब्दोंके भेदमें भी अर्थभेदको करता है ।

एवंभूतनयका लक्षण ।

एवम्भूतनयो यथा— इन्दतीति इन्द्रः ।

अर्थ— जो नय, जिस समय जो पदार्थ जिस क्रियारूपसे परिणत होरहा हो उस समय उस पदार्थको उसीरूपसे कहता है अर्थात् जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ है उसी क्रियारूप परिणत पदार्थको जो ग्रहण करता है उसको एवंभूतनय कहते हैं । जैसे— जिस समय देवोंका स्वामी इन्द्र, परमैश्वर्यविशिष्ट हो उसी समय उसको इन्द्र कहना, अन्य समयमें इन्द्र नहीं कहना । गमन करते समय ही गायको गाय कहना अन्य समयमें गाय नहीं कहना ।

अथवा जो नय, जिस समय आत्मा जिस ज्ञानसे परिणत होरहा हो उस समय उसको उसी रूपसे ग्रहण करता है उसको एवंभूतनय कहते हैं । जैसे— इन्द्रज्ञानपरिणत आत्माको इन्द्र कहना । अग्निज्ञान परिणत आत्माको अग्नि कहना ।

समभिरूढनय और इस नयमें इतना अन्तर है कि समभिरूढनय तो व्युत्पत्तिसे सिद्ध अर्थकी अपेक्षा नहीं करके एक शब्दके अनेक अर्थोंमेंसे प्रसिद्ध अर्थको ही ग्रहण करता हुआ सब अवस्थाओंमें उस पदार्थको उस पदार्थके वाचक शब्दसे कहता है । किन्तु एवम्भूतनय व्युत्पत्तिसे सिद्ध अर्थकी अपेक्षा करता हुआ जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ है उसी क्रियारूप परिणत पदार्थको ही उस शब्दसे कहता है । जैसे- गौ शब्दके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाणी, पृथ्वी, गमन, किरण आदि अनेक अर्थ हैं, परन्तु समभिरूढनय इस सब अर्थोंको छोड करके गौरूप प्रसिद्ध अर्थको ही ग्रहण करता हुआ सोती बैठती उठती आदि सब अवस्थाओंमें गौको गौ शब्दसे कहता है। किंतु एवंभूतनय गमनरूप क्रियाके समयमें ही गौको गौशब्दसे कहता है।

इसप्रकार ये नैगमादि सातों ही नय यदि परस्परमें अपेक्षा सहित हों तो सम्यक्नय कहलाते हैं। और यदि परस्परन अपेक्षा रहित हों तो मिथ्यानय कहलाते हैं।

इन सातों ही नयोंमेंसे नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीन नय तो द्रव्यको विषय करनेकी अपेक्षासे द्रव्यार्थिकनय कहलाते हैं, तथा ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये चार नय पर्यायको विषय करनेकी अपेक्षासे पर्यायार्थिकनय कहलाते हैं। इसीप्रकार नैगम आदि चार नय अर्थको विषय करते हैं इसलिए अर्थनय कहलाते हैं, तथा शब्दादिक तीन नय शब्दकी मुख्यतासे वस्तुको विषय करते हैं इसलिए शब्दनय कहलाते हैं।

इसके सिवाय इन सातोंही नयोंमेंसे पूर्व पूर्व के नय व्यापक होनेसे कारणरूप[1] तथा प्रतिकूल[2] महा

१-२- नैगमनय संग्रहनयका कारण है इसलिये नैगमनय कारणरूप है और संग्रहनय कार्यरूप है। संग्रहनय व्यवहार नयका कारण है इसलिए संग्रहनय कारणरूप तथा व्यवहारनय कार्यरूप है। व्यवहारनय ऋजुसूत्रनयका कारण है इसलिए व्यवहारनय कारणरूप और ऋजुसूत्रनय कार्यरूप है। ऋजुसूत्रनय शब्दनयका कारण है इसलिए ऋजुसूत्रनय कारणरूप तथा शब्दनय कार्यरूप है। शब्दनय समभिरूढनयका कारण है इसलिए शब्दनय कारणरूप और समभिरूढनय कार्यरूप है। समभिरूढनय एवंभूतनयका कारण है इसलिए समभिरूढनय कारणरूप तथा एवंभूतनय कार्यरूप है।

सारांश यह है कि सातों नयोंमेंसे नैगमनय केवल कारणरूप है और एवंभूतनय केवल कार्यरूप है। तथा शेषके पांच नय पूर्व २ के नयोंकी अपेक्षासे कार्यरूप और आगे २ के नयोंकी अपेक्षासे कारणरूप हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयवाले हैं । और उत्तर उत्तर के नय व्याप्य होनेसे कार्यरूप[३] तथा अनुकूल [४] अल्प विषयवाले हैं। अर्थात् नैगमनयसे संग्रहनयका अल्प विषय है, क्योंकि संग्रहनय तो केवल भावात्मक पदार्थकोही विषय करता है। परन्तु नैगमनय भावात्मक पदार्थको विषय करनेकी तरह अभावात्मक पदार्थको भी विषय करता है; अर्थात् जिस तरह नैगमनयका भावात्मक पदार्थमें सङ्कल्प होता है उसी तरह अभावात्मक पदार्थमें भी सङ्कल्प होता हैं, इसलिये नैगमनयकी अपेक्षासे संग्रहनयका अल्प विषय है । इसी तरह संग्रहनयसे व्यवहारनयका अल्प विषय है, क्योंकि संग्रहनय तो सामान्यतया सत्कोही विषय करता है, परन्तु व्यवहारनय संग्रहनयके विषयभूत उस सत्के भेदोंको–टुकडोंको–द्रव्यपर्यायको विषय करता है। व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयका अल्प विषय है, क्योंकि व्यवहारनय तो त्रिकालसम्बन्धी पर्यायोंको विषय करता है परन्तु ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमानकाल-सम्बन्धी पर्यायको ही विषय करता है। ऋजुसूत्रनयसे शब्द नयका अल्प विषय है, क्योंकि ऋजुसूत्र तो वर्तमान कालसम्बन्धी पर्यायोंको ही ग्रहण करता है परंतु शब्दनय वर्तमानकालसम्बन्धी पर्यायोंको भी लिंग, सख्या और कालादि-कके भेदसे विषय करता है। शब्दनयसे समभिरूढनयका अल्प विषय है, क्योंकि शब्दनयमें तो लिङ्गादिकके भेदसेही अर्थभेद माना जाता है पर्यायवाची शब्दोंके भेदसे नहीं, परन्तु समभिरूढनयमें पर्यायवाची शब्दोंके भेदसे भी अर्थ भेद

२-४– पूर्व २ के नयोंके विषयका आगे २ के नय विषय नहीं करते हैं अर्थात् पूर्व २ के नयोंका जो और जितना विषय है वही तथा उतना ही विषय आगे २ के नयोंका नहीं है किन्तु उनसे भिन्न और कम है इसलिए पूर्व २ के नय आगे २ के नयोंकी अपेक्षासे प्रतिकूल महाविषयवाले हैं तथा आगे २ के नयोंके विषयको पूर्व २ के नय विषय करते हैं अर्थात् आगे २ के नयोंका जो २ विषय है वह सब पूर्व २ के नयोंके विषयमें गर्भित होजाता है इसलिए आगे २ के नय पूर्व २ के नयोंकी अपेक्षासे अनुकूल अल्पविषयवाले हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाना जाता है। समभिरूढनयसे एवंभूतनयका अलग विषय है। क्योंकि समभिरूढनय तो सब अवस्थाओंमें किसी पदार्थको उस पदार्थके वाचक शब्दसे कहता है। परन्तु एवंभूतनय उस शब्दके अर्थके अनुसार क्रिया परिणत पदार्थकोही उस शब्दसे कहता है अर्थात् समभिरूढनय सोती बैठती उठती आदि सब अवस्थाओंमें गौको गौ शब्दसे कहता है। किन्तु एवंभूतनय गमनकरनेरूप अवस्थामेंही-गमन करते समयही गौको गौ शब्दसे कहता है अन्य समयमें नहीं।

उपसंहार—

उक्ता अष्टाविंशतिर्नयभेदाः।

अर्थ— इसप्रकार निश्चयनयके अट्ठाविस भेदोंका वर्णन किया।

उपनयभेदा उच्यन्ते।

अर्थ— अब आगे उपनयके-व्यवहानयके भेदोंको कहते हैं।

सद्भूतव्यवहारनयके भेद--

सद्भूतव्यवहारो द्विधा।

अर्थ— सद्भूत व्यवहारनय दो प्रकारका है।

भावार्थ— जो नय एक अखण्ड द्रव्यमें गुणगुणी और पर्यायपर्यायीका भेद करता है अर्थात् गुणगुणी तथा पर्यायपर्यायीरूपसे भेदकी कल्पना करता है उसको सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। उसके दो भेद हैं- एक शुद्धसद्भूतव्यवहारनय और दूसरा अशुद्धसद्भूतव्यवहारनय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण ।

शुद्धसद्भूतव्यवहारो यथा– शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्धपर्यायशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् ।

अर्थ– जो नय कर्मोपाधिसे रहित अखण्ड द्रव्यमें शुद्ध गुण और शुद्ध गुणी तथा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायीकी भेदकल्पना करता है उसको शुद्धसद्भूतव्यवहारनय अथवा अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे सिद्धजीवके शुद्ध केवलज्ञानादिक गुण तथा शुद्ध सिद्धपर्याय है ऐसा ग्रहण करना ।

अशुद्धसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण ।

अशुद्धसद्भूतव्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाशुद्धगुणिनोरशुद्धपर्यायाशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम् ।

अर्थ–जो नय कर्मोपाधिसे सहित अखण्ड द्रव्यमें अशुद्ध गुण और अशुद्ध गुणी तथा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायीकी भेदकल्पना करता है उसको अशुद्धसद्भूतव्यवहारनय अथवा उपचरितसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे- संसारी जीवके अशुद्ध मतिज्ञानादिक गुण और अशुद्ध नरनारकादि पर्यायें हैं ऐसा ग्रहण करना ।

उपसंहार ।

इति सद्भूतव्यवहारोऽपि द्वेधा ।

अर्थ— इसप्रकार सद्भूतव्यवहारनयके दोनों भेदोंका वर्णन किया ।

असद्भूतव्यवहारनयके भेद ।

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ– असद्भूतव्यवहारनय तीन प्रकारका है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ— जो नय अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोप करता है अर्थात् दूसरे द्रव्यके गुणधर्मोंका दूसरे द्रव्यमें आरोपण करता है उसको असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। उसके तीन भेद हैं- १ स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय २ विजात्यसद्भूतव्यवहारनय ३ स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारनय।

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा-परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि।

अर्थ— जो नय स्वजातीय द्रव्यादिकमें स्वजातीय द्रव्यादिकके सम्बन्धसे होनेवाले धर्मका आरोपण करता है उसको स्वजात्यसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे— परमाणु बहुप्रदेशी है ऐसा ग्रहण करना, क्योंकि वह भी-परमाणुभी द्व्यणुकादिक नाना प्रकारके स्कन्धरूप बहुत प्रदेशोंके-परमाणुओंके सम्बन्धसे बहुप्रदेशी हो सकता है। यहांपर स्वजातीय द्रव्यमें स्वजातीय द्रव्यके सम्बन्धसे होनेवाली विभावपर्यायका आरोपण किया गया है।

विजात्यसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा-मूर्तं मतिज्ञानं यतो मूर्तद्रव्येण जनितम्।

अर्थ— जो नय विजातीय द्रव्यादिकमें विजातीयद्रव्यादिकका आरोपण करता है उसको विजात्यसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे-- मतिज्ञान मूर्तीक है क्योंकि वह मूर्तीक द्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न होता है। यहांपर विजातीय (मूर्तित्वगुणकी अपेक्षासे) मतिज्ञान नामके गुणमें विजातीय मूर्तत्व नामके गुणका आरोप किया गया है।

भावार्थ— मतिज्ञानावरणकर्म और वीर्यांतरायकर्मके क्षयोपशम होनेपर मतिज्ञानकी उत्पत्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षयोपशमरूप अवस्था पौद्गलिक कर्मकी है और उसके होनेपर आत्मामें मतिज्ञानादिक धर्मकी उत्पत्ति होती है इसलिए मतिज्ञानादिकमें मूर्तीक कर्मको निमित्त होनेके कारण मतिज्ञानको मूर्तीक कहाजाता है। यही विजात्यसद्भूतव्यवहारनयका विषय है।

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा– ज्ञेये जीवेऽजीवे ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात्।

अर्थ— जो नय स्वजातीय तथा विजातीय द्रव्यादिकमें स्वजातीय और विजातीय द्रव्यादिकका समारोप करता है उसको स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे– जीव और अजीवको ज्ञानका विषय होनेके कारण विषयमें विषयिधर्मका आरोप करके जीव तथा अजीवरूप ज्ञेयको ज्ञान कहना। यहांपर ज्ञानगुणकी अपेक्षासे स्वजातीय जीव, और विजातीय अजीवमें, जीवकी अपेक्षासे स्वजातीय तथा अजीवकी अपेक्षासे विजातीय ज्ञानगुणका आरोप किया गया है। उपसंहार।

इत्यसद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ– इसप्रकार असद्भूतव्यवहारनयके तीनों भेदोंका वर्णन किया।

उपचारितअसद्भूतव्यवहारनयके भेद।

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ — [1] उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय तीन प्रकारका है।

१- उवयारा उवयारं सच्चासच्चेसु उहयअत्थेसु। सज्जाइइयरमिस्से उवयरिओ कुणइ ववहारो॥ न. च.।
अर्थ– जो नय उपचारसे सत्य, असत्य और उभयात्मक स्वजाति, विजाति तथा मिश्र द्रव्यमें स्वजाति, विजाति और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ---जो नय उपचारसे किसी प्रयोजन या निमित्तके वशसे किसी अन्य पदार्थमें किसी अन्यपदार्थका उपचार करता है- आरोपण करता है अर्थात् बिलकुल भिन्न पदार्थको अभेदरूपसे ग्रहण करता है उसको उपचरित असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। इसके तीनभेद हैं- १ स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय २ विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय ३ स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय।

स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा–पुत्रदारा[१] मम।

अर्थ— जो नय उपचारसे स्वजातीय द्रव्यमें स्वजातीय द्रव्यका आरोपण करता है उसको स्वजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे पुत्र, स्त्री आदिक मेरे हैं। इस दृष्टान्तमें स्वजातीय द्रव्यका स्वजातीय द्रव्यमें आरोपण किया गया है, क्योंकि मैं[२] भी सचेतनहूं और मेरे पुत्रादिक भी सचेतन हैं। इसलिये 'पुत्रादिक मेरे हैं ऐसा कहना या जानना स्वजात्युपचरित असद्भूतव्यवहारनयका विषय है।

विजात्युपचरित असद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा-वस्त्राभरणहेमरत्नादि मम।

मिश्र द्रव्यका उपचार करता है-आरोपण करता है उसको उपचरितासद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

१- दूसरी प्रतिमें ' पुत्राद्यहं मम वा पुत्रादि , ऐसा पाठ है जिसका कि यह अर्थ होता है कि पुत्रादिकरूप मैं ही हूं अथवा पुत्रादिक मेरे हैं।

२- मैं इस शब्दको आत्माका वाचक समझना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— जो नय उपचारसे विजातीय द्रव्यमें विजातीय द्रव्यका आरोपण करता है उसको विजात्युपचरित असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे— वस्त्र, आभूषण, सुवर्ण रत्नादिक मेरे हैं। इस दृष्टान्तमें विजातीय द्रव्यका विजातीय द्रव्यमें आरोपण किया गया है, क्योंकि मेरी अपेक्षासे अचेतन वस्त्रादिक विजातीय हैं, और अचेतन वस्त्रादिककी अपेक्षासे सचेतन मैं विजातीय हूं, इसलिए 'वस्त्राभरणादिक मेरे हैं, ऐसा कहना या जानना विजात्युपचरित असद्भूतव्यवहारनयका विषय है।

स्वजातिविजात्युपचरित असद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा- देशराज्यदुर्गादि[3] मम।

अर्थ— जो नय उपचारसे स्वजातीय तथा विजातीय द्रव्यमें स्वजातीय और विजातीय द्रव्यका आरोपण करता है उसको स्वजातिविजात्युपचरित असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे— देश, राज्य, दुर्गादिक मेरे हैं इस दृष्टांतमें मिश्र द्रव्यका मिश्र द्रव्यमें आरोपण किया गया है, क्योंकि देशादिकमें सचेतन और अचेतन दोनों ही प्रकारके पदार्थोंका समावेश रहता है, इसलिए जिसप्रकार मेरी अपेक्षासे देशादिकमें रहनेवाले सचेतन पदार्थ स्वजातीय और अचेतन पदार्थ विजातीय हैं उसीप्रकार मैं भी, देशादिकमें रहनेवाले सचेतन पदार्थोंकी अपेक्षासे सजातीय तथा अचेतन पदार्थोंकी अपेक्षासे विजातीय हूं। अतः 'यह देश अथवा राज्य मेरा है, ऐसा ग्रहण करना स्वजातिविजात्युपचरितअसद्भूतव्यवहारनय है।

भावार्थ— जो नय प्रयोजन या निमित्तसे बिलकुल सजातीय भिन्न पदार्थोंको अभेदरूपसे विषय करता है उसको स्वजात्युपचरित असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे- यह पुत्र मेरा है। इस दृष्टान्तमें पुत्र सर्वथा भिन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो करके सजातीय है, क्योंकि मैं भी सचेतन हूं और पुत्र भी सचेतन है। जो नय किसी प्रयोजन या निमित्तसे बिलकुल भिन्न विजातीय पदार्थोंको अभेदरूपसे विषय करता है उसको विजात्युपचरितअसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे– वस्त्र मेरा है। इस दृष्टान्तमें वस्त्र सर्वथा भिन्न होकरके विजातीय है, क्योंकि मैं सचेतन हूं और वस्त्र अचेतन है। जो नय किसी प्रयोजन या निमित्तसे बिलकुल भिन्न सजातीय तथा विजातीय दोनों प्रकारके पदार्थोंको अभेदरूपसे विषय करता है उसको स्वजातिविजात्युपचरितअसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे यह देश मेरा है। इस दृष्टान्तमें देश सजातीय भी है और विजातीय भी है, क्योंकि देशमें सचेतन तथा अचेतन दोनों ही प्रकारके पदार्थ पाये जाते हैं।

उपसंहार।

इत्युपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

अर्थ— इसप्रकार उपचरितअसद्भूतव्यवहारनयके तीनों भेदोंका बर्णन किया।

इसतरह अपने २ उत्तर भेदों सहित निश्चय और व्यवहारनयके संपूर्ण भेदोंका निरूपण करके अब आगे गुणका लक्षण बताते हैं।

सहभावा गुणाः।

अर्थ– जो साथ साथ होते हैं-रहते हैं उन्हें गुण कहते हैं।

भावार्थ– जो द्रव्यके साथ सदैव उसकी सब अवस्थाओंमें रहते हैं उन्हें गुण कहते हैं ऐसा सहभावी शब्दका अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिए। किन्तु जो साथ २ रहते हैं उन्हें गुण कहते हैं ऐसा ही सह-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावी शब्दका अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि जो द्रव्यके साथ रहते हैं वे गुण कहलाते हैं ऐसा सहभावी शब्दका माननेसे अर्थ द्रव्य, गुणोंसे भिन्न सिद्ध होता है और उस द्रव्यके साथ रहनेवाले गुण भिन्न सिद्ध होते हैं जो कि इष्ट नहीं है। कारण कि गुणोंके समुदायका नाम ही द्रव्य है। गुणोंसे भिन्न द्रव्य कोई पदार्थ ही नहीं है इसलिए अनेक गुण साथ रहते हैं अर्थात् जो गुण पहले समयमें रहते हैं वेही गुण द्वितीयादिक समयोंमें भी रहते हैं, कभी भी उनका परस्परमें विच्छेद नहीं होता है ऐसा ही सहभावी शब्दका अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

पर्यायका लक्षण।

क्रमवर्तिनः पर्यायाः।

अर्थ— जो क्रम २ से होती हैं उन्हें पर्याय कहते हैं।

भावार्थ— जिसप्रकार अनेक गुण सब समयोंमें साथ रहते हैं उसप्रकार पर्यायें सब समयोंमें साथ नहीं रहतीं हैं अर्थात् जो पर्यायें पूर्व समयमें रहतीं हैं वे पर्यायें उत्तर समयमें नहीं रहतीं हैं। किन्तु क्रम २ से अर्थात् एक पर्यायके बाद दूसरी पर्याय, दूसरी पर्यायके बाद तीसरी पर्याय इस क्रमसे होती रहतीं हैं, इसलिए उनको क्रमभावी अथवा क्रमवर्ती कहते हैं।

इसप्रकार गुण और पर्यायका लक्षण बताकरके अब आगे गुण शब्दकी व्युत्पत्तिको बताते हैं।

गुण्यते पृथक्क्रियते द्रव्यं द्रव्यान्तराद्यैस्ते गुणाः।

अर्थ— जिनके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे पृथक् किया जाता है वे गुण कहलाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ--- जो एक द्रव्यको दूसरे द्रव्यसे पृथक् करते हैं उन्हें गुण कहते हैं।

अस्तित्वगुणकी व्युत्पत्ति।

अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम्।

अर्थ– 'आस्ति इसके भावको अर्थात् सत्‌रूपपनेको अस्तित्व कहते हैं।

भावार्थ– जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका अस्तित्व सदैव कायम रहता है कभी भी उसका अभाव नहीं होता है उस शक्तिको आस्तित्वगुण कहते है।

वस्तुत्वगुणकी व्युत्पत्ति।

वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्।

अर्थ–– वस्तुके भावको वस्तुत्व कहते हैं।

भावार्थ--- जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रियाकारित्व पाया जाता है उस शक्तिको वस्तुत्वगुण कहते हैं।

वस्तुका स्वरूप।

सामान्यविशेषात्मकं वस्तु।

अर्थ– कथंचित् सामान्यविशेषात्मक वस्तु है।

भावार्थ– जो किसी अपेक्षासे सामान्यरूप और किसी अपेक्षासे विशेषरूप होती है उसको वस्तु कहते हैं। जैसे कुण्डल सोनेरूपसे सामान्यात्मक और कुण्डलरूपसे विशेषात्मक है। इसीतरह प्रत्येक वस्तुको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझना चाहिये। बौद्धादिकोंके द्वारा मानी हुई सर्वथा विशेषरूप, सांख्यादिकोंके द्वारा मानी हुई सर्वथा सामान्यरूप और नैयायिकादिकोंके द्वारा मानी हुई भिन्न २ सर्वथा सामान्यरूप अथवा सर्वथा विशेषरूप वस्तु नहीं है क्योंकि सर्वथा सामान्यरूप, सर्वथा विशेषरूप और सर्वथा भिन्न भिन्न सामान्य और विशेषरूप वस्तुकी प्रतीति नहीं होती है किंतु सामान्यविशेषात्मक ही वस्तु अनुभवमें आती है इसलिए वस्तुको कथंचित् सामान्यविशेषात्मक ही समझना चाहिए।

द्रव्यत्वगुणकी व्युत्पत्ति।

द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम्।

अर्थ— द्रव्यके भावको द्रव्यत्व कहते हैं।

भावार्थ— जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य कूटस्थ नित्य न होकर सदैव परिणमन करता रहता है उस शक्तिको द्रव्यत्व गुण कहते हैं।

द्रव्य शब्दकी व्युत्पत्ति।

निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवदिति द्रव्यम्।

अर्थ— जो अपने २ प्रदेशोंके समूहके द्वारा अखण्डवृत्तिसे-अखण्डपनेसे अपनी स्वभाव और विभाव पर्यायोंको प्राप्त होता है, प्राप्त होवेगा तथा प्राप्त होचुका है उसको द्रव्य कहते हैं।

प्रकारान्तरसे द्रव्यका लक्षण।

सद्द्रव्यलक्षणम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— द्रव्यका लक्षण सत् है।

सत्की व्युत्पत्ति।

सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत्।

अर्थ— जो सदैव अपने गुण और पर्यायोंमें व्याप्त होकरके रहता है अर्थात् गुण तथा पर्यायोंको प्राप्त होता है उसको सत् कहते हैं।

प्रकारान्तरसे सत्का लक्षण।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।

अर्थ— जो उत्पाद व्यय, और ध्रौव्यरूप होता है उसको सत् कहते हैं।

प्रमेयत्वगुणकी व्युत्पत्ति।

प्रमेयस्यभावः प्रमेयत्वम्।

अर्थ— प्रमेयके भावको प्रमेयत्व कहते हैं।

भावार्थ— जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी प्रमाणका विषय होता है उस शक्तिको प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

प्रमेयका लक्षण।

प्रमाणेन [1] स्वपरस्वरूपपरिच्छेद्यं प्रमेयम्।

1- 'प्रमाणेन स्वपरस्वरूपपरिच्छेदकेन परिच्छेद्यं प्रमेयं, ऐसा पाठ होता तो बहुत अच्छा था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– प्रमाणके द्वारा जाननेके योग्य जो स्व और पर स्वरूप है उसको प्रमेय कहते हैं ।

भावार्थ--- प्रमाण, स्व तथा पर दोनोंहीके स्वरूपका प्रकाशक होता है । इसलिए उस प्रमाणका विषयभूत जो स्व और पर स्वरूप है उसको प्रमेय कहते हैं । सारांश यह है कि जो प्रमाणका विषय होता है– प्रमाणके द्वारा जाना जाता है उसको प्रमेय कहते हैं ।

अगुरुलघुगुणकी व्युत्पत्ति ।

अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम् ।

अर्थ– अगुरुलघुके भावको अगुरुलघुत्व कहते हैं ।

भावार्थ— जिस शक्तिके निमित्तसे एक द्रव्य अथवा गुण दूसरे द्रव्य अथवा गुणरूप नहीं होता है उस शक्तिको अगुरुलघुत्वगुण कहते हैं । अथवा जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य तथा उसके गुणोंमें प्रतिसमय षड्गुणी हानिवृद्धि होती रहती है उसको अगुरुलघुत्वगुण कहते हैं ।

सूक्ष्मा वागगोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः ।

अर्थ— जो सूक्ष्म, वचनके अगोचर और प्रतिसमयमें परिणमनशील अगुरुलघु नामके गुण हैं उन्हें आगमप्रमाणसे स्वीकार करना चाहिये ।

भावार्थ– आगमप्रमाणसे सिद्ध जो अगुरुलघुनामके गुण हैं वे सूक्ष्म, वचनके अगोचर तथा प्रतिसमय परिणमनशील होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥

अन्वयार्थ– (जिनोदितं सूक्ष्मं तत्त्वं) जिनेंद्रभगवानके कहे हुए जो सूक्ष्म तत्व हैं वे (हेतुभिः नैव हन्यते) हेतुओंके द्वारा खण्डित नहीं किये जासकते हैं इसलिए जो तत्व सूक्ष्म हैं (तत्तु) उन पदार्थोंको तो (आज्ञासिद्धं ग्राह्यं) आगमप्रमाणसे ही ग्रहण करना चाहिये कारण कि (जिनाः अन्यथावादिनः न भवन्ति,) जिनेंद्रभगवान अन्यथावादी नहीं होते हैं ।

भावार्थ — जिनेंद्रभगवान राग, द्वेष तथा मोहादिकसे सर्वथा रहित हैं, इसलिए वे किसी भी तरह वस्तुके स्वरूपका अन्यथा प्रतिपादन नहीं करसकते हैं । क्योंकि रागद्वेषादिकके द्वारा ही वस्तुके स्वरूपका अन्यथा प्रतिपादन किया जाता है अन्यथा नहीं । अतः यदि अपनी अल्पज्ञताके कारण रागादिकसे सर्वथा रहित जिनेंद्रभगवानके द्वारा कहे हुए सूक्ष्म तत्वोंका-जिनका कि किसी भी हेतु तथा प्रमाणसे खण्डन नहीं होसकता है-स्वरूप समझमें नहीं आवे तो जिनेंद्रभगवानके वचनोंपर श्रद्धा रखकर उन्हें आगमप्रमाणसे ही ग्रहण करना चाहिये-स्वीकार करना चाहिये ।

प्रदेशत्वगुणकी व्युत्पत्ति ।

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वम् ।

अर्थ-- प्रदेशके भावको प्रदेशत्व कहते हैं ।

भावार्थ— जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें आकारविशेष होता है उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदेशका लक्षण।

प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम्।

अर्थ— एक अविभागीपुद्गलपरमाणुके द्वारा व्याप्त क्षेत्रको प्रदेश कहते हैं।

भावार्थ— जितने आकाशको एक अविभागी पुद्गलपरमाणु रोकता है उतने आकाशको प्रदेश[1] कहते हैं।

चेतनत्वगुणकी व्युत्पत्ति।

चेतनस्यभावश्चेतनत्वं चैतन्यमनुभवनम्।

अर्थ— चेतनके भावको अर्थात् पदार्थोंके अनुभवनको चेतनत्व कहते हैं।

भावार्थ— जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें प्रतिभासकता होती है उसको चेतनत्वगुण कहते हैं।

चैतन्यमनुभूतिः स्यात्सा क्रियारूपमेव च।
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम्॥ ६॥

अन्वयार्थ— (**चैतन्यं अनुभूतिः स्यात्**) चैतन्य नाम अनुभूतिका है (**च**) और (**सा**) वह अनुभूति (**क्रियारूपं एव**) क्रियारूपही होती है तथा (**क्रिया**) वह क्रिया (**मनोवचःकायेषु आन्विता**) मन, वचन और काय इन तीनों योगोंके अवलम्बनसे (**ध्रुवं वर्तते**) सदैव होती रहती है।

१- जावदियं आयासं अविभागिपुग्गलाणुवट्ठद्धं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणुदाणरिहं॥ (द्रव्यसंग्रह)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ— जीवाजीवादि पदार्थोंके स्वरूपके चिन्तवनको– अनुभवनको चेतना कहते हैं । तथा वह अनुभवन क्रियारूप ही पडता हैं । और वह क्रिया मनोयोगादिकके निमित्तसे सदैव होती रहती है ।

अचेतनत्वगुणकी व्युत्पत्ति ।

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम् ।

अर्थ— अचेतनके भावको अर्थात् पदार्थोंके अननुभवनको अचेतनत्व कहते हैं ।

भावार्थ— जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें प्रतिभासकता नहीं होती है उस शक्तिको अचेतनत्व गुण कहते हैं ।

मूर्तत्वगुणकी व्युत्पत्ति ।

मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्वम् ।

अर्थ– मूर्तके भावको अर्थात् रूपादिमानपनेको मूर्तत्व कहते हैं ।

भावार्थ— जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें स्पर्शादिक पाये जाते हैं उस शक्तिको मूर्तत्व गुण कहते हैं

अमूर्तत्वगुणकी व्युत्पत्ति ।

अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्त्वम् ।

अर्थ— अमूर्तके भावको अर्थात् रूपादि रहितपनेको अमूर्तत्व कहते हैं ।

भावार्थ– जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें स्पर्शादिक नहीं पाये जाते हैं उस शक्तिको अमूर्तत्वगुण कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति गुणानां व्युत्पत्तिः ।

अर्थ— इसप्रकार गुणोंकी व्युत्पत्ति कही ।

पर्यायकी व्युत्पत्ति ।

स्वभावविभावरूपतया याति पर्येति परिणमतीति पर्यायः[1] ।

अर्थ— जो स्वभाव और विभावरूपपनेसे सदैव परिणमन करती रहती है उसको पर्याय कहते हैं ।

इति पर्यायस्य व्युत्पत्तिः ।

अर्थ— इसप्रकार पर्यायकी व्युत्पत्ति कही ।

अब आगे स्वभावोंकी व्युत्पत्तिको बताते हैं ।

अस्तिस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

स्वभावलाभादच्युतत्त्वादस्तिस्वभावः ।

अर्थ— जिस द्रव्यको जो स्वभाव प्राप्त है उसके कभी भी च्युत नहीं होनेसे अर्थात् स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षासे द्रव्य अस्तिस्वभाव है ।

नास्तिस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः ।

अर्थ— वस्तुको परस्वरूपरूप नहीं होनेके कारण अर्थात् परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्य नास्तिस्वभाव है ।

१- अयनं आयः परि समन्तात् आयः पर्यायः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्यस्वभाव और अनित्यस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

निजनिजनानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः, तस्याप्यनेकपर्यायपरिणतत्वादनित्यस्वभावः ।

अर्थ— अपनी २ नाना पर्यायोंमें 'यह वही है, इसप्रकार द्रव्यका सद्भाव पाया जानेसे द्रव्य नित्य स्वभाव है। और उसी द्रव्यके अपनी भिन्न २ नानापर्यायोंरूपसे परिणत होनेके कारण वही द्रव्य अनित्य स्वभाव है।

एकस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः ।

अर्थ-- संपूर्ण स्वभावोंका एक आधार होनेकी अपेक्षासे द्रव्य एकस्वभाव है ।

भावार्थ— स्वभाव, स्वभावीको छोड करके नहीं रहते हैं, इसलिए संपूर्ण स्वभावोंका आधार एक द्रव्य ही पडता है इसलिए द्रव्य कथंचित् एकस्वभाव है ।

अनेक स्वभावकी व्युत्पत्ति ।

एकस्याप्यनेकस्वभावोपलम्भादनेकस्वभावः ।

अर्थ— एक ही द्रव्यके अनेक स्वभावोंकी उपलब्धि होनेसे नाना स्वभावोंकी अपेक्षा वह द्रव्य अनेक स्वभाव है ।

भेदस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणगुण्यादिसंज्ञादिभेदाद्भेदस्वभावः ।

अर्थ— गुणगुणी आदि संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजनके भेदकी अपेक्षासे द्रव्य भेदस्वभाव है ।

संज्ञासंख्यालक्षणप्रयोजनानि ।

अर्थ– 'गुणगुण्यादि, इत्यादि वाक्यमें संज्ञा उपलक्षण है जिससे संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन इन चारोंका ग्रहण है । जिसका यह तात्पर्य है कि गुण, गुणी इत्यादि संज्ञाभेदसे, गुण अनेक होते हैं और गुणी एक होता है इत्यादि संख्याभेदसे, द्रव्यका लक्षण सत् है और जो द्रव्यके आश्रय हों तथा स्वयं निर्गुण हों उन्हें गुण कहते हैं इसप्रकार लक्षणभेदसे और प्रयोजनके भेदसे द्रव्य भेदस्वभाव है ।

अभेदस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

गुणगुण्याद्येकस्वभावादभेदस्वभावः ।

अर्थ—गुण, गुणी आदिका एक स्वभाव होनेसे अर्थात् गुण और गुणी इत्यादिमें प्रदेशभेद न होनेके कारण जो एकस्वभाव पाया जाता है उस एकस्वभावकी अपेक्षासे द्रव्य अभेदस्वभाव है ।

भव्यस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

भाविकाले परस्वरूपाकारभवनात् भव्यस्वभावः ।

अर्थ– आगामी कालमें परस्वरूपके आकार होनेकी अपेक्षासे द्रव्य भव्यस्वभाव है ।

अभव्यस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनादभव्यस्वभावः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— तीनों कालोंमें भी परस्वरूपके आकार नही होनेकी अपेक्षासे द्रव्य अभव्यस्वभाव है। आगममें भी कहा है कि —

अण्णोणं पविसंता दिंता उग्गासमण्णमण्णस्स।
मेलंताविय णिच्चं सगसहावं ण जहंति॥ ७॥

अन्वयार्थ— (**अण्णोणं**) परस्परमें (**पविसंता**) प्रवेश करते हुये भी अर्थात् जहांपर एक द्रव्यके प्रदेश हैं उसी स्थानपर दूसरी द्रव्योंके प्रदेश रहने पर भी (**अण्णमण्णस्स**) एक दूसरेको (**उग्गासं**) अवकाश (**दिंता**) देते हुये (**णिच्चं**) निरंतर (**मेलंता विय**) मिलकर रहते हुये भी द्रव्य (**सगसहावं**) अपने स्वभावको (**ण जहंति**) नहीं छोडते हैं।

पारिणाभिक स्वभावकी व्युत्पत्ति।

पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः।

अर्थ— पारिणामिक भावोंकी प्रधानतासे द्रव्य परमस्वभाव है।

इति सामान्यस्वभावानां व्युत्पत्तिः।

अर्थ— इसप्रकार सामान्यस्वभावोंकी व्युत्पत्ति कही।

प्रदेशत्वादिगुणानां व्युत्पत्तिश्चेतनादिविशेषस्वभावानां च व्युत्पत्तिर्निगदिता।

अर्थ— प्रदेशत्वादि गुणोंकी व्युत्पत्ति और चेतनादि विशेष स्वभावोंकी व्युत्पत्ति पहले कह आये हैं। अब आगे स्वभावगुण नहीं होते हैं किन्तु गुण ही स्वभाव हो जाते हैं इस बातको बताते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मापेक्षया स्वभावा गुणा न भवन्ति। स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवन्ति। द्रव्याण्यपि भवन्ति।

अर्थ— धर्मकी अपेक्षासे- स्वभावकी अपेक्षासे स्वभाव गुण नहीं होते हैं। किन्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षासे परस्परमें गुण स्वभाव हो जाते हैं और द्रव्य भी हो जाते हैं

भावार्थ— गुण और पर्यायात्मक द्रव्य है इसलिये गुणोंके निमित्तसे और पर्यायोंके निमित्तसे होनेवाले जो धर्म हैं वे ही स्वभाव कहलाते हैं। जैसे द्रव्यमें आस्तित्व नामका गुण है इसलिये उस गुणके निमित्तसे प्रत्येक द्रव्य अस्तिस्वभाव है। उसी तरह द्रव्य नास्तित्वनामके गुणके निमित्तसे नास्तिस्वभाव, उत्पाद और व्ययरूप पर्यायके निमित्तसे अनित्यस्वभाव, ध्रौव्यरूप पर्यायके निमित्तसे नित्यस्वभाव, उपचरितपर्यायके निमित्तसे उपचरितस्वभाव और विभावपर्यायके निमित्तसे विभावस्वभाव है। इसी प्रकार दूसरे स्वभावोंके सम्बन्धमें भी समझ लेना। इससे यह सिद्ध होता है कि जब गुण वस्तुके धर्मरूपसे विवक्षित हो जाता है तो वही वस्तुका स्वभाव हो जाता है परन्तु स्वभाव, गुण नहीं होते क्योंकि शक्ति विशेषको गुण कहते हैं और उस शक्ति विशेषसे वस्तुका तद्रूप होना यही उसका स्वभाव है।

विभावस्वभावकी व्युत्पत्ति।

स्वभावादन्यथाभवनं विभावः।

अर्थ— स्वभावसे अन्यथा होनेको-विपरीत होनेको विभाव कहते हैं।

भावार्थ— स्वभावसे विपरीत स्वभावरूप होनेकी अपेक्षासे-वैभाविक विभावोंकी अपेक्षासे द्रव्य विभाव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाववाला कहलाता है ।

शुद्ध स्वभाव और अशुद्ध स्वभावकी व्युत्पत्ति ।

शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम् ।

अर्थ— केवल भावको अर्थात् परका जिसमें कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ऐसे भावको शुद्धस्वभाव कहते हैं । और शुद्ध स्वभावसे विपरीत भावको अशुद्ध स्वभाव कहते हैं ।

भावार्थ— शुद्ध भावोंकी अपेक्षासे द्रव्य शुद्धस्वभाववाला और अशुद्ध भावोंकी अपेक्षासे द्रव्य अशुद्धस्वभाववाला कहलाता है ।

उपचरितस्वभावकी व्युत्पत्ति ।

स्वभावस्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः ।

अर्थ— स्वभावका भी अन्यत्र उपचार करनेको उपचरितस्वभाव कहते है ।

भावार्थ— उपचरितभावोंकी अपेक्षासे द्रव्य उपचरितस्वभाववाला कहलाता है ।

उपचरितस्वभावके भेद ।

स द्वेधा- कर्मजस्वाभाविकभेदात् यथा- जीवस्य मूर्तत्वमचेतनत्वं, सिद्धात्मनां परज्ञता परदर्शकत्वं च ।

अर्थ— वह उपचरितस्वभाव कर्मज और स्वाभाविकके भेदसे दो प्रकारका है ।

भावार्थ— जो उपचरितस्वभाव कर्मके निमित्तसे होता है उसको कर्मज उपचरितस्वभाव कहते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे- जीवमें मूर्तत्व तथा अचेतनत्वस्वभाव। क्योंकि वास्तवमें- निश्चयनयसे जीव अमूर्त और चेतनस्वभाववाला ही है मूर्त व अचेतनस्वभाववाला नहीं। इसलिए जीवमें जो मूर्त तथा अचेतन स्वभाव माना गया है वह उपचारसे ही माना गया है वास्तवमें नहीं।

जो उपचरितस्वभाव स्वभावसे ही होता है उसको स्वाभाविक उपचरितस्वभाव कहते हैं जैसे-- सिद्ध जीवोंके परज्ञता और परदर्शकत्वस्वभाव। क्योंकि निश्चयनयसे आत्मा (मुक्तात्मा) अपनी आत्माका ही ज्ञाता द्रष्टा मानागया है। परपदार्थोंका ज्ञाताद्रष्टा नहीं। इसलिए आत्मा जो परपदार्थोंका ज्ञाता द्रष्टा कहा जाता है वह उपचारसे ही कहाजाता है वास्तवमें नहीं।

एवमितरेषां द्रव्याणामुपचारो यथासंभवो ज्ञेयः।

अर्थ— इसीप्रकार अन्य द्रव्योंमें भी यथासंभव उपचार--उपचरितस्वभाव लगा लेना चाहिये।

इति विशेषस्वभावानां व्युत्पत्तिः।

अर्थ--- इसप्रकार विशेष स्वभावोंकी व्युत्पत्ति कही।

अब आगें सर्वथा एकांतपक्ष माननेमें दोष दिखाते हैं।

दुर्णयैकांतमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते।
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ता सकलंका नया यतः॥ ८॥

अन्वयार्थ– (भावानाम्) पदार्थोंको (**दुर्णयैकांतमारूढाः**) मिथ्या एकांतरूपसे ग्रहण करनेवाले (**ते**) नय (**हि**) नियम करके (**स्वार्थिकाः**) दूसरे नयोंकी अपेक्षा रहित केवल अपनी पुष्टि करनेवाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं तथा (**यतः**) जिस कारणसे वे नय केवल अपनी ही पुष्टि करनेवाले होते हैं इसलिये (**स्वार्थिकाः**) दूसरे नयोंकी अपेक्षा न करके केवल अपनी पुष्टि करनेवाले (**च**) और (**विपर्यस्ताः**) विपरीत ऐसे (**नयाः**) नय (**सकलंकाः भवंति,**) दूषित होते हैं ।

भावार्थ—जो नय केवल एकांतसे पदार्थोंको ग्रहण करते हैं उनको और जो नय पदार्थोंको विपरीतरूपसे ग्रहण करते है उनको मिथ्यानय समझना चाहिये ।

तत्कथम्— यह कैसे समझा जावे कि जो नय एकांतसे अथवा विपरीतरूपसे पदार्थोंको ग्रहण करते हैं वे मिथ्या नय होते हैं ।

तथाहि— आगे इसी विषयका खुलासा करते हैं ।

सर्वथा सत् और असत्पक्ष माननेमें दोष ।

सर्वथैकान्तेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था संकरादिदोषत्वात् । तथाऽसद्रूपस्य सकलशून्यता-प्रसङ्गात् ।

अर्थ— यदि सर्वथा एकान्तरीतिसे पदार्थ सत् स्वरूपही माना जायगा तो संकर व्यतिकर आदि अनेक दोषोंके आनेके कारण पदार्थोंकी नियमित व्यवस्था नहीं हो सकेगी । और यदि पदार्थ सर्वथा असत् स्वरूपही माना जायगा तो सम्पूर्ण पदार्थोंको असदात्मक होनेसे सकलशून्यताका प्रसङ्ग आवेगा । तथा शकलशून्यताका प्रसङ्ग आनेसे पदार्थोंकी नियमित व्यवस्था नहीं होसकेगी ।

भावार्थ— सत् सामान्यकी अपेक्षासे सम्पूर्ण पदार्थ एकरूपसे माने गये । इसलिये सर्वथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्के पक्ष माननेमें संकरादिक दोषोंके आनेसे सम्पूर्ण पदार्थोंको एकरूप होनेके कारण 'यह जीव द्रव्य है और यह पुद्गलद्रव्य है, इत्यादि रूपसे पदार्थोंकी नियमित व्यवस्था नहीं होसकती है। अतएव असत् पक्ष-निरपेक्ष सर्वथा सत्पक्ष मानना-पदार्थोंको सर्वथा सत्रूप मानना ठीक नहीं है। इसीतरह सर्वथा असत्पक्षके माननेमें खरविषाणकी तरह संपूर्ण पदार्थोंको असदात्मक होनेसे सकलशून्यताका प्रसंग आवेगा। इसलिये सत्पक्ष निरपेक्ष सर्वथा असत् पक्ष मानना भी ठीक नहीं है।

सर्वथा नित्यपक्षमें दोष।

नित्यस्यैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः।

अर्थ— यदि पदार्थ सर्वथा नित्यरूप माना जायगा तो वह एक रूप हो जावेगा। और एकरूप होनेसे उसमें अर्थक्रियाकारित्वका अभाव हो जायगा। तथा अर्थक्रियाकारित्वके अभाव होनेपर द्रव्यका भी अभाव हो जायगा। क्योंकि जब अर्थक्रियाकारित्वही पदार्थका लक्षण है तब उसके-अर्थक्रियाकारित्वके अभावसे पदार्थोंका अभाव होना भी स्वाभाविक है अतःअनित्य पक्ष निरपेक्ष सर्वथा नित्यपक्ष मानना कार्यकारी नहीं हैं।

सर्वथा अनित्यपक्षमें दोष।

अनित्यपक्षेऽपि [1]अनित्यरूपत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः।

अर्थ— सर्वथा अनित्यपक्षमें भी पदार्थोंको अनित्यरूप होनेसे अथवा निरन्वय होनेसे अर्थ

१- 'निरन्वयत्वात् ऐसा भी पाठ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रियाकारित्वका अभाव हो जायगा। और अर्थक्रियाकारित्वके अभावमें द्रव्यका भी अभाव होजायगा। अतः नित्यपक्ष निरपेक्ष सर्वथा अनित्यपक्ष मानना भी ठीक नहीं है।

सर्वथा एकपक्ष माननेमें दोष।

एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः सर्वथैकरूपत्वात्, विशेषाभावे सामान्यस्याप्यभावः।

अर्थ– एकान्तसे एक स्वरूपके माननेमें-सामान्य पक्षके माननेमें संपूर्ण पदार्थोंको सर्वथा एकरूप होनेसे विशेषका अभाव होजायगा। और विशेषके अभावमें-अनेकके अभावमें सामान्यका भी-एकका भी अभाव होजायगा।

निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ— (**हि**) निश्चय करके (**निर्विशेषं सामान्यं**) विशेषसे रहित सामान्य (**खरविषाणवत्**) गधेके सींगकी तरह होता है (**च**) और (**सामान्यरहितत्वात्**) सामान्यसे रहित होनेके कारण (**विशेषः हि**) विशेष भी (**तद्वत् एव**) गधेके सींगकी तरहही होता है (**इति ज्ञेयः**) ऐसा समझना चाहिये।

भावार्थ— जिसप्रकार असदात्मक होनेसे गधेके सींगकी सत्ता सिद्ध नहीं होती है उसीप्रकार विशेषके विना सामान्यकी और सामान्यके विना विशेषकी भी सत्ता सिद्ध नहीं होसकती है।

सारांश यह है कि सामान्य तथा विशेष ये दोनों ही परस्परमें सापेक्ष हैं। क्योंकि सामान्यके अभावमें विशेषका और विशेषके अभावमें सामान्यका अभाव होजाता है। इसलिए पदार्थको, अनेक निरपेक्ष–विशेष निरपेक्ष सर्वथा एकरूप-सामान्यरूप मानना ठीक नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वथा अनेकपक्षमें दोष।

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेयाभावाच्च।

अर्थ— सर्वथा अनेक पक्षमें भी पदार्थोंको निराधार और आधार आधेयभावका अभाव होनेसे द्रव्यका अभाव होजायगा।

भावार्थ— सामान्य यह आधार है और विशेष आधेय हैं। यदि केवल विशेषरूप अनेकरूपही पदार्थ माने जावें तो आधारभूत सामान्यके बिना केवल आधेयरूप विशेष बनही नहीं सकते हैं। अथवा केवल विशेषके माननेसे आधारआधेयभाव भी नहीं बन सकता है और आधारआधेयभावके नहीं बन सकनेसे विशेष नहीं बनेंगे तथा उनके नहीं बन सकनेसे द्रव्यका ही अभाव होजायगा। अतएव पदार्थको एक निरपेक्ष- सामान्य निरपेक्ष सर्वथा अनेकरूप— विशेषरूप मानना ठीक नहीं हैं।

सर्वथा भेदपक्षके माननेमें दोष—

भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः।

अर्थ— सर्वथा भेदपक्षके माननेमें भी विशेष स्वभावोंको निराधार होनेसे अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होजायगा। और अर्थक्रियाकारित्वके अभावमें द्रव्यका भी अभाव होजायगा। इसलिए अभेदनिरपेक्ष सर्वथा भेदपक्ष मानना-द्रव्यको अपने स्वभावोंसे सर्वथा भिन्न मानना युक्तियुक्त नहीं है।

सर्वथा अभेदपक्षके माननेमें दोष।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभेदपक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वं, सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ।

अर्थ—सर्वथा अभेदपक्षके माननेमें भी द्रव्य, गुण और स्वभाव आदि संपूर्ण पदार्थ एकरूप हो जावेंगे। और संपूर्ण पदार्थोंको एकरूप हो जानेपर अर्थक्रियाकारित्वका अभाव हो जायगा। तथा अर्थक्रियाकारित्वके अभावमें द्रव्यका भी अभाव हो जायगा। अतः भेद निरपेक्ष सर्वथा अभेद पक्ष मानना भी अर्थात् द्रव्यको अपने गुणादिकोंसे सर्वथा अभिन्न मानना भी ठीक नहीं है।

सर्वथा भव्यस्वभावके माननेमें दोष।

भव्यस्यैकान्तेन पारिणामिकत्वात्[१] द्रव्यस्य द्रव्यान्तरप्रसंगात् संकरादिदोषसंभवः।

अर्थ— सर्वथा भव्य स्वभावके माननेसे द्रव्यको परिणामी होनेके कारण—परपरिणतिरूप होनेके कारण द्रव्यान्तरत्वका प्रसंग आवेगा, और द्रव्यान्तरत्वका प्रसंग आनेसे संकरादिक दोष आवेंगे।

भावार्थ-- यदि सर्वथा भव्यस्वभाव ही माना जायगा। अर्थात् द्रव्य सदैव परस्वरूपाकार ही रहता है कभी भी स्वस्वरूपाकार नहीं होता है ऐसा एकान्तपक्ष माना जायगा तो परिणामी होनेसे द्रव्यको दूसरे द्रव्यरूप होनेका प्रसंग आवेगा। और ऐसा होनेसे--एक द्रव्यको दूसरे द्रव्यरूप होनेसे संपूर्ण द्रव्योंको एकरूप होनेके कारण संकर आदि अनेक दोष आवेंगे। अतः अभव्यस्वभाव निरपेक्ष सर्वथा भव्यस्वभाव मानना-पदार्थको सर्वथा परस्वरूपाकार मानना ठीक नहीं है।

१- दूसरी प्रतिमें 'परपरिणत्या, ऐसा पाठ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकर आदि आठ दोषोंका खुलासा ।

संकरव्यतिकरविरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंशयाप्रतिपत्त्यभावाश्चेति ।

अर्थ– संकर, व्यतिकर, विरोध, वैयधिकरण्य, अनवस्था, संशय, अप्रतिपत्ति और अभाव इस तरह आठ दोष होते हैं । जिन दो धर्मोंका एक समानाधिकरण किसी भी प्रकार नहीं बनसकता है उन दोनों धर्मोंका एक आधारमें समावेश करनेको संकर दोष कहते हैं । जैसे जिस रूपसे भेद है उसी रूपसे भेद और अभेद दोनों मानना संकर है । भिन्न भिन्न रूपसे रहनेवाले दो धर्मोंका एक दूसरे रूपसे माननेको व्यतिकर कहते हैं । जैसे जिस रूपसे भेद है उस रूपस अभेद मानना और जिस रूपसे अभेद है उस रूपसे भेद मानना व्यतिकर दोष है । परस्परमें विरुद्ध दो धर्मोंका एक वस्तुमें कल्पना करनेको विरोध कहते हैं । जैसे शीत और उष्ण धर्मका एक आधार मानना विरोध है । परस्पर विरुद्ध दो धर्मोंके अधिकरण भिन्न भिन्न होते हैं, परन्तु उनको एक जगह माननेसे वैयधिकरण्य दोष आता है । जैसे उष्णका अन्य अधिकरण और शीतका अन्य अधिकरण वैयधिकरण्य है । कार्यकारण आदि सम्बन्धसे रहित अप्रामाणिक अनन्त प्रवाहके प्रसंग होनेको अनवस्था दोष कहते हैं । जैसे जिस स्वरूपको लेकर भेद है और जिस स्वरूपको लेकर अभेद है वे दोनों स्वरूप भिन्न हैं कि अभिन्न । यहांपर भी इसीप्रकार परिकल्पना करनेसे अनवस्था दोष आता है । विरुद्ध अनेक कोटिको स्पर्श करनेवाले विकल्पको संशय कहते हैं, क्योंकि ऐसी स्थितिमें वस्तुका असाधारण स्वरूपसे निश्चय नहीं होसकता है । जैसे यह सीप है कि चांदी । वस्तुका नियमित आकार, नियमित क्षेत्र, नियमित काल और नियमित भावरूपसे ज्ञान नहीं होनेको अप्रतिपत्ति दोष कहते हैं । जैसे यह सीप है कि चांदी यहांपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियमित आकारादिकरूपसे ज्ञान नहीं होनेके कारण वास्तवमें यह क्या वस्तु है ऐसा नहीं समझा जासकता है। तथा जो वस्तु किसीके ज्ञानका विषय ही नहीं होती वह वस्तु नहीं ही है ऐसा समझा जाता है । जैसे गधेके सींग किसीके ज्ञानके विषय नहीं हैं अतएव वे अभावरूप हैं । इसतरह सर्वथा एकांतरूप वस्तुको माननेपर ऊपर कहे हुए ये आठ दोष आते हैं ।

सर्वथा अभव्यस्वभावके माननेमें दोष ।

सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गः स्वरूपेणाप्यभवनात् ।

अर्थ— सर्वथा अभव्यस्वभावको भी एकान्तसे माननेपर स्वरूपसे भी नहीं होनेके कारण सकलशून्यताका प्रसंग आवेगा ।

भावार्थ— यदि द्रव्य सर्वथा स्वस्वरूपाकार ही रहता है कभी भी परस्वरूपाकार नहीं होता है ऐसा एकान्तपक्ष माना जायगा तो परस्वरूपके अभावमें अपने स्वरूपसे भी नहीं होनेके कारण सकलशून्यताका प्रसंग आवेगा । अतः भव्यस्वभावनिरपेक्ष सर्वथा अभव्यस्वभाव मानना—पदार्थको सर्वथा स्वस्वरूपाकार मानना ठीक नहीं है ।

सर्वथा स्वभावपक्षके माननेमें दोष ।

स्वभावस्वरूपस्यैकान्ते संसाराभावः ।

अर्थ— सर्वथा स्वभावस्वरूपके एकान्तमें संसारका अभाव होजायगा ।

भावार्थ— यदि जीव सदैव अपने स्वभावमें ही स्थित रहता है कभी भी विभाव स्वभावमय नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है ऐसा सर्वथा स्वभावस्वरूपके एकान्तका पक्ष माना जायगा तो कभी भी जीव विभावस्वभावरूप नहीं होगा। और विभावस्वभावरूप न होनेसे संसारका अभाव होजायगा। अतः विभावस्वभावनिरपेक्ष सर्वथा स्वभावस्वरूप-पक्ष मानना अर्थात् आत्माको सर्वथा स्वभावस्वरूप मानना कार्यकारी नहीं है।

सर्वथा विभावपक्षके माननेमें दोष।

विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः।

अर्थ– सर्वथा विभावपक्षके माननेमें मोक्षका भी अभाव होजायगा।

भावार्थ— यदि जीव सदैव विभावस्वभावमय ही रहता है। कभी भी अपने शुद्धस्वभावमय नहीं होता है ऐसा सर्वथा एकान्तपक्ष माना जायगा तो जीव कभी भी अपने शुद्धस्वभावरूप नहीं होगा। और शुद्धस्वभावरूप न होनेसे मोक्षका भी अभाव होजायगा। अतः स्वभावपक्ष निरपेक्ष सर्वथा विभावपक्ष मानना भी– आत्माको सर्वथा विभावस्वभावरूप मानना भी ठीक नहीं है।

सर्वथा चैतन्यपक्षमें दोष।

सर्वथा चैतन्यमेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः स्यात्, तथासति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुरुः शिष्य इत्यभावः।

अर्थ— सर्वथा चैतन्यपक्षके माननेमें सब जीवोंको शुद्धज्ञानरूप चैतन्यकी प्राप्ति हो जावेगी। और उस शुद्धज्ञानरूप चैतन्यकी प्राप्ति हो जानेपर ध्यान, ध्येय, ज्ञान, ज्ञेय, गुरु, शिष्य इत्यादि सम्पूर्ण व्यवहारका अभाव हो जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ— यदि सर्वथा चैतन्यपक्ष माना जायगा तो सामान्यरूपसे संपूर्ण जीवोंको शुद्धज्ञानरूप चैतन्यकी प्राप्ति होजानेसे ध्यान-ध्येय, ज्ञान-ज्ञेय आदि समस्त लोकव्यवहारका अभाव होजायगा। अतः अचैतन्य निरपेक्ष सर्वथा चैतन्यपक्ष मानना ठीक नहीं है।

सर्वथा शब्दके विषयमें विचार।

सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची, सर्वकालवाची, नियमवाची, अनेकान्तसापेक्षी वा? यदि सर्वप्रकारवाची, सर्वकालवाची, अनेकान्तवाची वा सर्वादिगणे पठनात् सर्वथाशब्दः तर्हि सिद्धं नः समीहितं। अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात्? (नित्यः, अनित्यः, एकः, अनेकः, भेदः, अभेदः, इति कथं प्रतीतिः स्यात्) नियमितपक्षत्वात्।

अर्थ— सर्वथा शब्द सर्वप्रकारवाची है, अथवा सर्वकालवाची है, अथवा नियमवाची है, अथवा अनेकान्तवाची है? यदि सर्वादि गणमें पाठ होनेसे सर्वथा शब्द सर्वप्रकारवाची, सर्वकालवाची अथवा अनेकान्तवाची है तो हमारा समीहित-इष्टसिद्धांत सिद्ध होगया। ऐसा न होकर यदि सर्वथाशब्द नियमवाची है तो फिर नियमितपक्ष होनेके कारण संपूर्ण अर्थोंकी अर्थात् नित्य-अनित्य, एक-अनेक, भेद-अभेद आदिरूप संपूर्ण पदार्थोंकी प्रतीति तुमको कैसे होगी अर्थात् सर्वथाशब्दको नियमवाची माननेपर नित्यानित्यादिरूपसे जो संपूर्ण पदार्थोंकी प्रतीति होती है वह प्रतीति भी तुमको किसी तरहसे नहीं होसकेगी।

भावार्थ— स्याद्वादी सर्वथैकान्तवादियोंसे पूंछते हैं कि सर्वथैकान्तपदमें जो सर्वथा शब्द है वह सर्वप्रकार, सर्वकाल, अनेकांत और नियममेंसे किसका वाचक है? यदि सर्वप्रकार, सर्वकाल अथवा अनेकांत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का वाचक है तो हमको इष्ट है, क्योंकि हम भी पदार्थोंको कथंचित् नित्यानित्यादिरूप मानते हैं। यदि सर्वथा शब्द नियमका वाचक है तो फिर नियामित पक्षके होनेसे नित्यानित्यादिरूपसे जो पदार्थोंकी प्रतीति होती है वह प्रतीति भी तुमको किसी तरहसे नहीं होसकेगी। इसलिए सर्वथा शब्दको सर्वप्रकार, सर्वकाल अथवा अनेकान्तका ही वाचक मानना ठीक है नियमका वाचक मानना ठीक नहीं है।

सर्वथा अचैतन्यपक्षमें दोष।

तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात्।

अर्थ– सर्वथा अचैतन्यपक्षके माननेमें भी संपूर्ण चैतन्यके उच्छेदका प्रसंग आता है। अतः चैतन्य पक्ष निरपेक्ष सर्वथा अचैतन्यपक्ष मानना भी ठीक नहीं है।

सर्वथा मूर्तस्वभावके माननेमें दोष।

मूर्तस्यैकान्तेनात्मनो मोक्षस्यानवाप्तिः स्यात्।

अर्थ— एकान्तसे–सर्वथा मूर्त स्वभावके माननेमें आत्माको कभी भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होगी।

भावार्थ– कर्मोंके सम्बन्धसे ही आत्मा कथंचित् मूर्तीक माना गया है सर्वथा नहीं। इसलिए यदि आत्मा सर्वथा मूर्तीक ही माना जायगा तो सदैव कर्मोंका सम्बन्ध रहनेसे कभी भी उसको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होगी अतएव अमूर्तस्वभावनिरपेक्ष सर्वथा मूर्त स्वभाव मानना--आत्माको सर्वथा मूर्तीक मानना ठीक नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वथा अमूर्तस्वभावके माननेमें दोष ।

सर्वथाऽमूर्तस्यापि तथात्मनः संसारविलोपः स्यात् ।

अर्थ– आत्माको सर्वथा अमूर्तीक माननेमें संसारका लोप होजायगा ।

भावार्थ— कर्मोंका अभाव होनेपर आत्मा अमूर्तीक कहाजाता है, इसलिए यदि आत्मा सर्वथा अमूर्तीक ही मानाजायगा तो सदैव कर्मोंका अभाव रहनेसे संसारका अभाव होजायगा अर्थात् आत्माको कभी भी संसारकी प्राप्ति नहीं होगी । अतः मूर्तस्वभावनिरपेक्ष सर्वथा अमूर्तस्वभाव मानना--आत्माको सर्वथा अमूर्तीक मानना युक्तिसङ्गत नहीं है ।

सर्वथा एकप्रदेशस्वभावके माननेमें दोष ।

एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्वहानिः स्यात् ।

अर्थ– सर्वथा एकप्रदेशस्वभावके माननेमें अखण्डतासे परिपूर्ण आत्माके, अनेक कार्यकारित्व--अनेक क्रियाकारित्वरूप स्वभावकी हानि होजावेगी । इसलिए अनेकप्रदेशस्वभावनिरपेक्ष एकप्रदेशस्वभाव मानना--आत्माको सर्वथा एकप्रदेशी मानना ठीक नहीं है ।

सर्वथा अनेकप्रदेशस्वभाव माननेमें दोष ।

सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थक्रियाकारित्वं स्वस्वभावशून्यताप्रसंगात् ।

अर्थ– सर्वथा अनेकप्रदेशस्वभावके माननेमें भी अखण्डैकप्रदेशरूप अपने स्वभावकी शून्यताका प्रसंग आनेसे आत्माके अनर्थक्रियाकारित्वका प्रसंग आवेगा अर्थात् अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होजायगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः एकप्रदेशस्वभावनिरपेक्ष सर्वथा अनेकप्रदेशस्वभाव मानना—आत्माको सर्वथा अनेकप्रदेशी मानना ठीक नहीं है ।

सर्वथा शुद्धस्वभावके माननेमें दोष ।

शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्मकलंकावलेपः सर्वथा निरंजनत्वात् ।

अर्थ— सर्वथा शुद्धस्वभावके माननेमें आत्माको सर्वथा निरंजन होनेके कारण—कर्ममलसे रहित होनेके कारण कभी भी उसके कर्ममलरूपी कलंकका सम्बन्ध नहीं होगा ।

भावार्थ— यदि आत्मा सर्वथा शुद्ध माना जायगा तो सदैव कर्मोंसे रहित होनेके कारण कभी भी वह कर्ममलरूपी कलंकसे युक्त नहीं होगा । अतः कभी भी आत्माके कर्मोंका बन्ध नहीं होगा । अतः सर्वथा शुद्धस्वभाव मानना--आत्माको सदैव शुद्ध मानना युक्तियुक्त नहीं है ।

सर्वथा अशुद्धस्वभावके माननेमें दोष ।

सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथाऽत्मनो न कदापि शुद्धस्वभावप्रसङ्गः स्यात् तन्मयत्वात् ।

अर्थ— सर्वथा अशुद्धस्वभावके एकान्तमें भी आत्माको सदैव अशुद्धस्वभावमय होनेसे कभी भी उसको शुद्धस्वभावकी प्राप्ति नहीं होगी ।

भावार्थ— यदि आत्मा सर्वथा अशुद्ध ही है शुद्ध नहीं है तो वह सदैव अशुद्ध ही रहेगा शुद्ध नहीं होगा । और शुद्ध न होनेसे अर्थात् अशुद्धस्वभावमय होनेसे कभी भी वह शुद्धस्वभावको प्राप्त नहीं कर सकेगा । इसलिए शुद्धस्वभावनिरपेक्ष सर्वथा अशुद्धस्वभाव मानना--आत्माको सर्वथा अशुद्ध मानना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठीक नहीं हैं।

सर्वथा उपचरितपक्षमें दोष।

उपचरितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमितपक्षत्वात्।

अर्थ— उपचरित एकान्तपक्षमें भी नियमित पक्ष होनेसे आत्माके आत्मज्ञता सम्भव नहीं होती है।

भावार्थ— यदि उपचरितस्वभावसे आत्मा सर्वथा पर पदार्थोंका ही ज्ञाता दृष्टा है आत्माका नहीं ऐसा उपचरित एकान्तपक्ष माना जायगा तो नियमित पक्ष होनेके कारण आत्मामें जो अनुपचारसे आत्माको जाननेरूप आत्मज्ञता पाई जाती है उसका अभाव होजायगा अर्थात् आत्मामें आत्मज्ञता सिद्ध नहीं होसकेगी। अतः अनुपचारितपक्ष निरपेक्ष सर्वथा उपचरित पक्ष मानना अर्थात् आत्माको सर्वथा परपदार्थोंकाही ज्ञाता दृष्टा मानना युक्ति संगत नहीं है।

सर्वथा अनुपचारितपक्षमें दोष।

तथाऽत्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधःस्यात्।

अर्थ— अनुपचरितएकांतपक्षमें भी आत्माके परज्ञतादिकका विरोध होजायगा।

भावार्थ— यदि अनुपचरितस्वभावसे आत्मा सर्वथा आत्माका ही ज्ञाता-दृष्टा है परपदार्थोंका नहीं ऐसा अनुपचरितएकान्तपक्ष मानाजायगा तो आत्मामें जो उपचारसे परपदार्थोंके जानने देखनेरूप परज्ञतादिक धर्म पाये जाते हैं उन सबका अभाव होजायगा अर्थात् आत्मा परपदार्थोंका ज्ञातादृष्टा सिद्ध नहीं होसकेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए उपचरितपक्षनिरपेक्ष सर्वथ अनुपचरितपक्ष मानना भी--आत्माको सर्वथा आत्मज्ञ मानना भी ठीक नहीं है।

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।
तच्च सापेक्षसिद्धयर्थं स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु ॥ १० ॥

अन्वयार्थ– (प्रमाणतः) प्रमाणसे (नानास्वभावसंयुक्तं) अस्ति, नास्ति आदि नाना स्वभावोंसे तादात्म्यको प्राप्त (द्रव्यं) द्रव्यको (ज्ञात्वा) जान करके (सापेक्षसिद्धयर्थं) अपेक्षासे वस्तुकी सिद्धि करनेके लिए (तच्च) उस द्रव्यको (स्यान्नयैः) कथंचित् द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदि नयोंसे (मिश्रितम्) मिश्रित (कुरु) करो।

भावार्थ— पदार्थोंको जाननेके दो मुख्य साधन हैं प्रमाण और नय। उनमें प्रमाण सर्वांशरूपसे पदार्थको विषय करता है और नय एकदेशरूपसे पदार्थको विषय करता है। इसलिए जिस समय अपेक्षाकी मुख्यता न करके समग्र पदार्थ ज्ञानका विषय होता है उस समय वह प्रमाणका विषय कहलाता है। और जिस समय अपेक्षाकी मुख्यतासे पदार्थ ज्ञानका विषय होता है उस समय एकदेशको विषय करनेवाला होनेसे वह पदार्थ नयका विषय कहलाता है। तात्पर्य प्रमाणकी अपेक्षासे एक प्रमाणसाध्य समग्र द्रव्य है और नयकी अपेक्षासे अनेक नयसाध्य समग्र द्रव्य होती है।

अब आगे किस २ द्रव्यमें किस २ नयकी अपेक्षासे कौन २ सा स्वभाव पाया जाता है इस बातको बताते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्ति स्वभावः ।

अर्थ– स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावको ग्रहण करनेवाले द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्योंमें अस्तिस्वभाव पाया जाता है ।

परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्भाव ।

अर्थ— परद्रव्य, परक्षेत्र परकाल और परभावको ग्रहण करनेवाले द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्योंमें नास्तिस्वभाव पाया जाता है ।

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः ।

अर्थ— उत्पादव्ययको गौणकरके केवल सत्ताको ग्रहण करनेवाले द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्योंमें नित्यस्वभाव पाया जाता है ।

केनचित्पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः ।

अर्थ— पर्यायार्थिकनयके भेदोंमेंसे अनित्यस्वभावग्राहक पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्योंमें अनित्य स्वभाव पाया जाता है ।

भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः ।

अर्थ— भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्योंमें एकस्वभाव पाया जाता है ।

अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेकस्वभावत्वम् ।

अर्थ — अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे एक ही द्रव्यमें अनेक स्वभाव पाये जाते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः ।

अर्थ– सद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे गुण, गुणी आदि भेदरूपसे भेदस्वभाव पाया जाता है ।

भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेदस्वभावः ।

अर्थ– भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे गुण-गुणी आदिरूपसे भेद न होकर अभेदस्वभाव पाया जाता है ।

परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः ।

अर्थ– परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे द्रव्योंमें भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव तथा पारिणामिकस्वभाव-परमस्वभाव पाया जाता है ।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण चेतनस्वभावो जीवस्य ।

अर्थ— शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे जीवमें चेतनस्वभाव पाया जाता है ।

असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः ।

अर्थ– असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे कर्म और नोकर्मोंमें भी चेतनस्वभाव पाया जाता है ।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः ।

अर्थ– परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे कर्म तथा नोकर्मोंमें अचेतनस्वभाव पाया जाता है ।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः ।

अर्थ— असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे जीवमें भी अचेतनस्वभाव पाया जाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोर्मूर्तस्वभावः।

अर्थ— परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे कर्म और नोकर्मोंमें मूर्तस्वभाव पाया जाता है।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः।

अर्थ— असद्भूत व्यवहारनयकी अपेक्षासे जीवमें भी मूर्तस्वभाव पाया जाता है।

परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्तस्वभावः।

अर्थ— परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे पुद्गलद्रव्यको छोडकर बाकीके जीव, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पांचों द्रव्योंमें अमूर्तस्वभाव पाया जाता है।

पुद्गलस्योपचारादेवास्त्यमूर्तस्वभावः।

अर्थ— पुद्गलद्रव्यमें उपचारसे ही अमूर्तस्वभाव पाया जाता है वास्तवमें नहीं।

परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्वम्।

अर्थ— परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे कालाणु और पुद्गलपरमाणुमें एकप्रदेशस्वभाव पाया जाता है।

भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां धर्माधर्माकाशजीवानां चाखण्डत्वादेकप्रदेशस्वभावत्वम्।

अर्थ— भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे अखण्ड होनेके कारण धर्म, अधर्म, आकाश तथा जीव इन चार द्रव्योंमें भी एकप्रदेशस्वभाव पाया जाता है।

भेदकल्पनासापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेशस्वभावत्वम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– भेदकल्पनासापेक्ष द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे उक्त धर्म, अधर्म, आकाश तथा जीव इन चारों ही द्रव्योंमें नानाप्रदेशस्वभाव पाया जाता है।

पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशस्वभावत्वं न च कालाणोः स्निग्धरूक्षत्वाभावात्। अरूक्षत्वाच्चाणोरमूर्तकालस्यैकविंशतितमो भावो न स्यात्।

अर्थ— पुद्गलपरमाणुमें उपचारसे ही नानाप्रदेशस्वभाव मानागया है वास्तवमें नहीं। किंतु कालाणुमें पुद्गलपरमाणुके समान उपचारसे भी नानाप्रदेशस्वभाव नहीं मानागया है। क्योंकि उसमें स्निग्ध तथा रूक्षपना नहीं पाया जाता है। और स्निग्ध व रूक्षपनेके नहीं पाये जानेसे उस अमूर्तिक कालाणुमें इक्कीसवां उपचरितस्वभाव नहीं पाया जाता है।

भावार्थ– पुद्गलद्रव्यमें स्निग्धरूक्षपना और उपचरितस्वभाव ये दोनों ही पाये जाते हैं। अतः पुद्गलपरमाणुको द्व्यणुक आदि नाना प्रकारके स्कन्ध व रूक्षरूप बहुत प्रदेशोंके सम्बन्धसे बहुप्रदेशी होसकनेके कारण उसमें (पुद्गलपरमाणुमें) तो उपचारसे नानाप्रदेशस्वभाव पाया जाता है। किन्तु कालद्रव्यमें स्निग्धरूक्षपना तथा उपचरितस्वभाव ये दोनों ही नहीं पाये जाते हैं। इसलिए कालाणुको बहुप्रदेशी न होसकनेके कारण उसमें--कालाणुमें उपचारसे भी नानाप्रदेशस्वभाव नहीं पाया जाता है।

सारांश यह है कि स्निग्ध तथा रूक्षगुणके निमित्तसे ही बन्ध होता है। इसलिये पुद्गलपरमाणुमें स्निग्ध तथा रूक्षगुणके पाये जानेसे वह तो दूसरे पुद्गलोंके साथ सम्बन्धको प्राप्त होकर बहुप्रदेशी होसकता है। किन्तु कालाणुमें स्निग्ध रूक्षगुणके नहीं पाये जानेसे वह किसी भी तरह बहुप्रदेशी— नाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदेशी नहीं हो सकता है।

परोक्षप्रमाणापेक्षयाऽसद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्तत्वं पुद्गलस्य।

अर्थ– परोक्षप्रमाणकी अपेक्षासे–मतिश्रुतज्ञानकी[1] अपेक्षासे अथवा असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे पुद्गलद्रव्यमें उपचारसे अमूर्तस्वभाव पाया जाता है।

शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन विभावस्वभावत्वम्।

अर्थ– शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे जीव तथा पुद्गल इन दो द्रव्योंमें विभावस्वभाव पाया जाता है।

शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः।

अर्थ– शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे छहों ही द्रव्योंमें शुद्धस्वभाव पाया जाता है।

१- जो परोक्षप्रमाण इंद्रियाके निमित्तसे उत्पन्न होता है वह स्थूल मूर्तीक पदार्थोंको ही विषय करता है सूक्ष्म मूर्तीकको नहीं। क्योंकि इंद्रियोंका विषय सूक्ष्मपदार्थ नहीं। अतएव परोक्षप्रमाणकी अपेक्षासे पुद्गलद्रव्यमें अमूर्तस्वभाव पाया जाता है ऐसा कहागया है। कारण कि दूसरे प्रकारसे मूर्त तथा अमूर्तका लक्षण ग्रंथामें इसप्रकार भी बताया है कि जो इंद्रियोंके गोचर हो–इंद्रियोंके द्वारा ग्रहण किया जासके उसको मूर्त कहते हैं। और जो इंद्रियोंके अगोचर हो–इंद्रियोंके द्वारा ग्रहण नहीं किया जासके उसको अमूर्त कहते हैं। इस मूर्त तथा अमूर्तके लक्षणकी अपेक्षासे परमाणुरूप पुद्गलद्रव्यमें मतिश्रुतज्ञानात्मक परोक्षप्रमाणकी अपेक्षासे बराबर अमूर्तस्वभाव घटजाता है। क्योंकि परमाणु सूक्ष्म होनेसे इंद्रियगोचर नहीं होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुद्धद्रव्यार्थिकेन अशुद्धस्वभावः ।

अर्थ— अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें अशुद्ध स्वभाव पाया जाता है ।

असद्भूतव्यवहारेणोपचरितस्वभावः ।

अर्थ— असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे उक्त जीव तथा पुद्गल इन दो द्रव्योंमें उपचरितस्वभाव पाया जाता है ।

द्रव्याणां तु यथारूपं तल्लोकेऽपि व्यवस्थितम् ।
तथा ज्ञानेन संज्ञातं नयोऽपि हि तथाविधः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ— (**द्रव्याणां तु**) जीवादि द्रव्योंका (**यथारूपम्**) जिस प्रकारका स्वरूप है [**लोकेऽपि**] लोकमें भी [**तत्**] वह द्रव्योंका स्वरूप (**व्यवस्थितम्**) उसी प्रकारसे स्थित है । तथा [**ज्ञानेन**] ज्ञानसे (**तथा**) उसी प्रकार [**संज्ञातम्**) जाना जाता है और [**नयोऽपि**] नय भी [**हि**] नियम करके [**तथाविधः**], उसी प्रकार [**प्रवर्तते**] प्रवृत्ति करता है ! अर्थात् जिसप्रकार जीवादिक द्रव्योंका स्वरूप है उसी प्रकार उसकी लोकमें व्यवस्था है तथा प्रमाण और नयके द्वारा भी उसका--स्वरूपका उसी प्रकार ग्रहण होता है ।

इति नययोजनिका।

इसप्रकर किस नयसे कौन वस्तु किस प्रकारकी समझी जाती है इसका खुलासा समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणका लक्षण ।

सकलवस्तुग्राहकं प्रमाणम् ।

अर्थ— संपूर्ण वस्तुके ग्रहण करनेवाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं ।

भावार्थ— जो ज्ञान संपूर्ण अंशोंसहित वस्तुको ग्रहण करता है उसको प्रमाण कहते हैं ।

प्रमाणकी व्युत्पत्ति ।

प्रमीयते परिच्छिते वस्तुतत्वं येन ज्ञानेन तत् प्रमाणम् ।

अर्थ— जिसज्ञानके द्वारा वस्तुतत्व--वस्तुका स्वरूप जाना जाता है वह प्रमाण कहलाता है ।

प्रमाणके भेद ।

तद्द्वेधा सविकल्पेतरभेदात् ।

अर्थ— वह प्रमाण दो प्रकारका है- एक सविकल्पक प्रमाण और दूसरा निर्विकल्पक प्रमाण ।

सविकल्पक प्रमाणका स्वरूप और भेद ।

सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपम् ।

अर्थ— मनकी अपेक्षा रखनेवाले ज्ञानको सविकल्पक प्रमाण कहते है । और वह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान इसतरह चार प्रकारका है ।

निर्विकल्पकप्रमाणका स्वरूप ।

निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— मनकी अपेक्षा नहीं रखनेवाले केवलज्ञानको निर्विकल्पप्रमाण कहते हैं।

इति प्रमाणस्य व्युत्पत्तिः।

अर्थ— इसप्रकार प्रमाणकी व्युत्पत्ति कही।

नयकास्वरूप।

प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थैकांशो नयः, श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीति वा नयः।

अर्थ— प्रमाणके द्वारा ग्रहण की गई वस्तुके एक अंशके ग्रहण करनेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। अथवा श्रुतज्ञानके विकल्पको नय कहते हैं। अथवा ज्ञाताके अभिप्रायको नय कहते हैं। अथवा जो नाना स्वभावोंसे हटाकरके किसी एक स्वभावमें वस्तुको प्राप्त कराता है उसको नय कहते हैं।

भावार्थ— प्रमाणके द्वारा प्रकाशित अर्थविशेषके निरूपण करनेवाले ज्ञानको नय कहते हैं।

नयके भेद।

स द्वेधा सविकल्पनिर्विकल्पभेदात्।

अर्थ— वह नय दो प्रकारका है- एक सविकल्पनय और दूसरा निर्विकल्पनय। यहां सविकल्पनयसे पर्यायार्थिकनय और निर्विकल्पनयसे द्रव्यार्थिकनयका अभिप्राय है।

इति नयस्य व्युत्पत्तिः।

अर्थ— इसप्रकार नयकी व्युत्पत्ति कही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निक्षेपकी व्युत्पत्ति ।

प्रमाणनययोर्निक्षेपणं आरोपणं निक्षेपः स नामस्थापनादिभेदेन चतुर्विधः ।

अर्थ— प्रमाण और नयके विषयमें यथायोग्य नामादिरूपसे पदार्थके निक्षेपण करनेको आरोपण करनेको अर्थात् नामादिकमें पदार्थके आरोपण करनेको निरपेक्ष कहते है । और वह नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भावके भेदसे चार प्रकारका है ।

भावार्थ— युक्तिके द्वारा सुयुक्त मार्गके होते हुए कार्यके वशसे नाम, स्थापना, द्रव्य और भावमें पदार्थके आरोपण करनेको निक्षेप[1] कहते हैं । अथवा जिस उपायके द्वारा पदार्थोंका व्यवहार किया जाता है उस उपायको निक्षेप कहते हैं । अथवा पदार्थकी संज्ञा आदि रखनेको निक्षेप कहते हैं । उसके चार भेद हैं — १- नाम २- स्थापना ३- द्रव्य और ४- भाव ।

नामनिक्षेप-- जाति-सादृश्य, गुण आदि दूसरे निमित्तोंकी अपेक्षा न करके लोकव्यवहारको चलानेके लिए जो किसी पदार्थकी कोई संज्ञा रखदी जाती है उसको नामनिक्षेप कहते हैं जैसे-- किसी पुरुषने अपने लडकेका नाम महादेव रखलिया । परन्तु उसमें विषपान, भस्मविलेपन आदि महादेवसरीखें कुछ भी गुण नहीं है । केवल लोकव्यवहारको चलानेके लिए ही उसने उसका नाम महादेव रखलिया है । अतः महादेव यह नाम गुणोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता है अर्थात् गुण, जाति आदि इसमें कुछ भी निमित्त नहीं है । सिर्फ लोकव्यवहारको चलानेके लिए वक्ताका अभिप्राय ही निमित्त है ।

१- जुत्ती सुजुत्तमग्गे जं चउभेयेग होइ खलु ठवणं । कज्जे सदि .ामा.दिसु तं णिक्खेवं हवे समये ॥ न. च. ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापनानिक्षेप-- किसी साकार अथवा निराकार पदार्थमें 'यह वही है, इसप्रकार किसी अन्य पदार्थके आरोप करनेको--अन्य पदार्थकी स्थापना करनेको स्थापनानिक्षेप कहते हैं जैसे-- अर्हंतकी मूर्तिको अर्हंत कहना अथवा शतरंजकी गोटोंको हाथी, घोडा, राजा, वर्जार आदि कहना।

स्थापनानिक्षेपके दो भेद हैं– १- तदाकारस्थापना २- अतदाकारस्थापना। किसी समान आकारवाले पदार्थमें उसीके समान आकारवाले किसी अन्य पदार्थकी स्थापना करनेको, अर्थात् जिस पदार्थकी स्थापना करना है उस पदार्थके समान आकारवाले किसी अन्य पदार्थमें उस पदार्थकी स्थापना करनेको तदाकार स्थापना कहते हैं जैसे– पार्श्वनाथकी प्रतिमामें जो पार्श्वनाथकी स्थापना की जाती है वह तदाकार स्थापना कहलाती है। किसी निराकार पदार्थमें किसी साकार पदार्थकी स्थापना करनेको अर्थात् जिस पदार्थकी स्थापना करना है उस पदार्थके आकारसे सर्वथा रहित किसी अन्य पदार्थमें उस पदार्थकी स्थापना करनेको अतदाकार स्थापना कहते हैं। जैसे- शतरंजकी गोटोंमें जो हाथी, घोडा, बादशाह, बजीर आदिकी स्थापना कीजाती है वह अतदाकारस्थापना कहलाती है।

नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेपमें इतना अन्तर है कि नामनिक्षेपमें तो नामके अनुसार पूज्य अपूज्यबुद्धि-आदर-अनादरबुद्धि नहीं होती है। किन्तु स्थापनानिक्षेपमें होती है जैसे– आदिनाथनामधारी किसी पुरुषका आदिनाथकी तरह आदर नहीं होता है किन्तु आदिनाथकी प्रतिमाका अवश्य होता है।

द्रव्यनिक्षेप-- भूतकालमें प्राप्त होचुकी अवस्थाको अथवा आगामी कालमें प्राप्त होनेवाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्थाको वर्तमानमें कहना द्रव्यनिक्षेप है। तात्पर्य यह है कि जो पदार्थ भूतकालमें जिस रूपसे था अथवा आगामी कालमें जिस रूपसे होगा उस पदार्थका वर्तमानमें भी उसी रूपसे व्यवहार करना द्रव्य-निक्षेप कहलाता है। जैसे– राज्यके चले जानेपर भी पुरुषको वर्तमानमें राजा कहना अथवा आगे राजा होनेवाले राजाके पुत्रको वर्तमानमें राजा कहना।

भावनिक्षेप– वर्तमान पर्यायके द्वारा उपलक्षित पदार्थको भावनिक्षेप कहते हैं। सारांश यह है कि जो पदार्थ वर्तमानमें जिसरूपसे है उस पदार्थका उसीरूपसे व्यवहार करना भावनिक्षेप कहलाता है जैसे– राज्य करते समयही पुरुषको राजा कहना।

इन चारों निक्षेपोंमेंसे आदिके तीन निक्षेप तो द्रव्यार्थिकनयके विषय हैं। और अन्तका भावनिक्षेप पर्या-यार्थिकनयका विषय है।

उपसंहार।

इति निक्षेपस्य व्युत्पत्तिः।

अर्थ— इसप्रकार निक्षेपकी व्युत्पत्ति कही।

द्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति।

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः।

अर्थ— द्रव्यकोही ग्रहण करना जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिकनय कहलाता है।

भावार्थ— जो नय पर्यायको गौण करके द्रव्यको मुख्यतासे विषय करता है उसको द्रव्या-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

र्थिकनय कहते हैं।

शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति।

शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः।

अर्थ— शुद्ध द्रव्यको ग्रहण करना ही जिस नयका प्रयोजन है वह शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहलाता है।

भावार्थ— जो नय शुद्ध द्रव्यको विषय करता है उसको शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

अशुद्धद्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति।

अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धद्रव्यार्थिकः।

अर्थ— अशुद्ध द्रव्यकोही ग्रहण करना जिसनयका प्रयोजन है वह अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहलाता है।

भावार्थ— जो नय अशुद्धद्रव्यको विषय करता है उसको अशुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

अन्वयद्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति।

सामान्यगुणाद्यन्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति द्रवति व्यवस्थापयतीत्यन्वयद्रव्यार्थिकः।

अर्थ— जो नय अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य गुणोंके अन्वयरूपसे ये द्रव्य हैं, ये द्रव्य हैं इसप्रकार व्यवस्था करता है उसको अन्वयद्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति।

स्वद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादिग्राहकः।

अर्थ— स्वद्रव्यादिकको ग्रहण करना ही जिस नयका प्रयोजन है वह स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय कहलाता है ।

भावार्थ— जो नय स्वद्रव्यादिकको विषय करता है उसको स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते हैं ।

परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति ।

परद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परद्रव्यादिग्राहकः ।

अर्थ— परद्रव्यादिकको ग्रहण करना ही जिस नयका प्रयोजन है वह परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहलाता है ।

भावार्थ— जो नय परद्रव्यादिकको विषय करता है उसको परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते हैं ।

परमभावग्राहकद्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति ।

परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः ।

अर्थ— परमभावको ग्रहण करना जिस नयका प्रयोजन है वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहलाता है ।

भावार्थ— जो नय परमभावको विषय करता है उसको परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते हैं ।

इति द्रव्यार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ।

अर्थ— इसप्रकार द्रव्यार्थिकनयकी व्युत्पत्ति कही ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायार्थिकनयकी व्युत्पत्ति ।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ।

अर्थ— पर्यायको ग्रहण करना ही जिस नयका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिकनय कहलाता है ।

भावार्थ– जो नय द्रव्यको गौण करके पर्यायको मुख्यतासे विषय करता है उसको पर्यायार्थिकनय कहते हैं ।

अनादिनित्यपर्यायार्थिकनयकी व्युत्पत्ति ।

अनादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यनादिनित्यपर्यायार्थिकः ।

अर्थ– अनादिनित्यपर्यायको ग्रहण करना ही जिस नयका प्रयोजन है वह अनादिनित्यपर्यायार्थिकनय कहलाता है ।

भावार्थ— जो नय अनादि और नित्यपर्यायोंको विषय करता है उसको अनादिनित्यपर्यायार्थिकनय कहते हैं ।

सादिनित्यपर्यायार्थिकनयकी व्युत्पत्ति ।

सादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्यपर्यायार्थिकः ।

अर्थ– सादिनित्यपर्यायको ग्रहण करना ही जिस नयका प्रयोजन है वह सादिनित्यपर्यायार्थिकनय कहलाता है ।

भावार्थ-- जो नय सादि और नित्यपर्यायोंको विषय करता है उसको सादिनित्यपर्यायार्थिकनय कहते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धपर्यायार्थिकनयकी व्युत्पत्ति।

शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः।

अर्थ— शुद्ध पर्यायको ग्रहण करना ही जिस नयका प्रयोजन है वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है।

भावार्थ— जो नय शुद्ध पर्यायको विषय करता है उसको शुद्धपर्यायार्थिकनय कहते हैं।

अशुद्ध पर्यायार्थिकनयकी व्युत्पत्ति।

अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः।

अर्थ— अशुद्धपर्यायको ग्रहण करना ही जिसनयका प्रयोजन है वह अशुद्धपर्यायार्थिकनय कहलाता है।

भावार्थ— जो नय अशुद्धपर्यायको विषय करता है उसको अशुद्धपर्यायार्थिकनय कहते हैं।

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्ति।

अर्थ— इसप्रकार पर्यायार्थिकनयकी व्युत्पत्ति कही।

नैगमनयकी व्युत्पत्ति।

नैकं गच्छतीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः।

अर्थ— जो अनेक अर्थात् भाव और अभाव अथवा भेद और अभेदको प्राप्त होता है उसको निगम अर्थात् विकल्प कहते हैं और जो नय उस निगम—विकल्पमें उत्पन्न होता है उसको नैगमनय कहते हैं। अर्थात् नैगमनय भेद, अभेद तथा भाव और अभावको विषय करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संग्रहनयकी व्युत्पत्ति ।

अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः ।

अर्थ— जो नय अभेदरूपसे संपूर्ण वस्तुसमूहको विषय करता है उसको संग्रहनय कहते हैं ।

व्यवहारनयकी व्युत्पत्ति ।

संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु येन व्यवह्रियत इति व्यवहारः ।

अर्थ— जो नय संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थको भेदरूपसे व्यवहार करता है–ग्रहण करता है उसको व्यवहारनय कहते हैं ।

भावार्थ— संग्रहनय अभेदको विषय करता है परन्तु व्यवहारनय संग्रहनयके विषयमें विधि-पूर्वक भेद करता है ।

ऋजुसूत्रनयकी व्युत्पत्ति ।

ऋजु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः ।

अर्थ— जो नय ऋजु-सरल अर्थात् केवल शुद्ध वर्तमानसमयवर्ती पर्यायको ही ग्रहण करता है उसको ऋजुसूत्रनय कहते हैं ।

शब्दनयकी व्युत्पत्ति ।

शब्दाद्व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः ।

अर्थ— जो नय शब्द अर्थात् व्याकरणसे, प्रकृति और प्रत्ययके द्वारा सिद्ध अर्थात् निष्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दको मुख्यकर विषय करता है उसको शब्दनय कहते हैं।

समभिरूढनयकी व्युत्पत्ति।

परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः। शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति, यथा शक्र इन्द्रः पुरंदर इत्यादयः समभिरूढाः।

अर्थ— परस्परमें अभिरूढ शब्दोंको ग्रहण करनेवाला नय समभिरूढ कहलाता है अर्थात् जो नय एकार्थवाची अनेक शब्दोंको एकरूपसे ग्रहण करता है उसे समभिरूढनय कहते हैं। इस नयके विषयमें शब्दभेद रहनेपर भी अर्थभेद नहीं है। जैसे शक्र, इन्द्र और पुरंदर। यहांपर शब्दभेद है परन्तु इस नयकी दृष्टिसे ये तीनों शब्द एक देवराजके वाचक हैं। क्योंकि ये तीनों ही शब्द देवराजके पर्यायवाची होनेसे देवराजमें अभिरूढ हैं।

एवंभूतनयकी व्युत्पत्ति।

एवं क्रियाप्रधानत्वेन भूयत इति इत्येवंभूतः।

अर्थ— जो नय वर्तमानक्रियाकी प्रधानतासे होता है--अपने विषयमें प्रवृति करता है उसको एवंभूतनय कहते हैं।

द्रव्यार्थिकनयके भेद।

शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।

अर्थ— शुद्धनिश्चयनय और अशुद्धनिश्चयनय ये दोनों द्रव्यार्थिनयके भेद हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चयनयकी व्युत्पत्ति ।

अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः ।

अर्थ— जो नय अभेदकी अनुपचारतासे अर्थात् अभेदकी मुख्यतासे वस्तुका निश्चय करता है उसको निश्चयनय कहते हैं ।

व्यवहारनयकी व्युत्पत्ति ।

भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः ।

अर्थ— जो नय भेदकी उपचारतासे अर्थात् एक अखंडवस्तुमें खंड करके वस्तुका व्यवहार करता है उसको व्यवहारनय कहते हैं ।

भावार्थ— तत्वतः प्रत्येक पदार्थ अखंड है इसलिये वस्तुको अखंडतया अभेदरूपसे ग्रहण करनेवाला द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय है । परंतु केवल उतने मात्रसे लोकव्यवहार नहीं चलता और न पूरी तरहसे वस्तुकी प्रतीति ही होसकती है । अतएव एक अखंड पदार्थमें गुण, गुणांश, द्रव्य, द्रव्यांश, इत्यादिरूपसे भेदोपचार किया जाता है । परंतु यह भेदोपचार सर्वथा असत्य भी नहीं है, क्योंकि यदि इसको सर्वथा असत्य मानलिया जावे तो एक अखंड आकाशमें घटाकाश, मठाकाश इत्यादि व्यवहार नहीं हो सकता है परंतु इसप्रकारका व्यवहार तो होता है अतएव भेदोपचाररूप व्यवहारको ग्रहण करनेवाला व्यवहारनय है ।

सद्भूतव्यवहारनयकी व्युत्पत्ति ।

गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदात् भेदकः सद्भूतव्यवहारः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– जो नय संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजनके भेदसे गुणगुणीमें भेदकी कल्पना करता है उसको सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

असद्भूतव्यवहारनयकी व्युत्पत्ति।

अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहारः।

अर्थ– जो नय अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका--पुद्गलादिकमें प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोपण करता है--जीवादिकमें समारोपण करता है उसको असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

उपचरितअसद्भूतव्यवहारनयकी व्युत्पत्ति।

असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः।

अर्थ— असद्भूतव्यवहारका नाम ही उपचार है। इसलिए जो नय उपचारसे भी उपचार करता है उसको उपचरितासद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

सद्भूतव्यवहारनयका विषय।

गुणगुणिनोः पर्य्यायपर्य्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः।

अर्थ– गुणगुणीमें, पर्यायपर्यायीमें, स्वभावस्वभावीमें और कारककारकीमें-कारककारकवानमें भेद करना सद्भूतव्यवहारनयका विषय है।

असद्भूतव्यवहारनयका विषय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्ये द्रव्योपचारः, गुणे गुणोपचारः, पर्य्याये पर्य्यायोचारः, द्रव्ये गुणोपचारः, द्रव्ये पर्य्यायोपचारः, गुणे द्रव्योपचारः, गुणे पर्य्यायोपचारः, पर्य्याये द्रव्योपचारः, पर्य्याये गुणोपचारः इति नवविध असद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ।

अर्थ– द्रव्यमें द्रव्यका उपचार करना, गुणमें गुणका उपचार करना, पर्य्यायमें पर्य्यायका उपचार करना, द्रव्यमें गुणका उपचार करना, द्रव्यमें पर्य्यायका उपचार करना, गुणमें द्रव्यका उपचार करना, गुणमें पर्य्यायका उपचार करना, पर्य्यायमें द्रव्यका उपचार करना और पर्य्यायमें गुणका उपचार करना इसतरह असद्भूतव्यवहारनयका विषय नौं प्रकारका है ।

भावार्थ– जो नय अन्यद्रव्यमें अन्यद्रव्यका आरोपण करता है उसको द्रव्यमें द्रव्यका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे— एकेन्द्रियादि जीवोंके पौद्गलिक शरीरको जीव कहना । इस दृष्टान्तमें विजातीय जीवद्रव्यका विजातीय शरीरात्मक पुद्गलद्रव्यमें आरोपण किया गया है । क्योंकि शरीरकी अपेक्षासे जीव विजातीय है और जीवकी अपेक्षासे शरीर विजातीय है। जो नय अन्यगुणमें अन्यगुणका आरोपण करता है उसको गुणमें गुणका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे— मूर्तिक द्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न होनेके कारण मतिज्ञानको मूर्तिक कहना । इसदृष्टान्तमें विजातीय मूर्तित्वगुणका विजातीय मतिज्ञानगुणमें आरोपण किया गया है । क्योंकि मतिज्ञान गुणकी अपेक्षासे मूर्तत्वगुण विजातीय है जो नय अन्य पर्यायमें अन्य पर्यायका आरोपण करता है उसको पर्यायमें पर्यायका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे– चन्द्रके प्रतिबिम्बको चन्द्र कहना अथवा शुद्ध जीवकी पर्यायको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवकी पर्याय कहना। इस दृष्टान्तमें सजातीय पर्यायका सजातीय पर्यायमें आरोपण किया गया है। जो नय द्रव्यमें गुणका आरोपण करता है उसको द्रव्यमें गुणका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं, जैसे जीव और अजीवस्वरूप ज्ञेयको ज्ञानका विषय होनेसे ज्ञान कहना। इस दृष्टांतमें ज्ञानकी अपेक्षासे सजातीय जीव और विजातीय अजीव द्रव्यमें जीवकी अपेक्षासे सजातीय तथा अजीवकी अपेक्षासे विजातीय ज्ञानगुणका आरोपण किया गया है। जो नय द्रव्यमें पर्यायका आरोपण करता है उसको द्रव्यमें पर्यायका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं, जैसे एकप्रदेशी पुद्गलपरमाणुको द्व्यणुक आदि नाना प्रकारके स्कन्धोंके सम्बन्धसे बहुप्रदेशी होसकनेके कारण बहुप्रदेशी कहना। यहांपर स्वजातीय द्रव्यमें स्वजातीय विभावपर्यायका आरोपण किया गया है। जो नय गुणमें द्रव्यका आरोपण करता है उसको गुणमें द्रव्यका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे-- शुक्ल गुणसे युक्त प्रासाद अथवा पाषाणको शुक्ल प्रासाद अथवा शुक्ल पाषाण कहना, अथवा उपयोगको आत्मा कहना। यहांपर स्वजातीय गुणमें स्वजातीय द्रव्यका आरोपण किया गया है। जो नय गुणमें पर्यायका आरोपण करता है उसको गुणमें पर्यायका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे-- ज्ञान गुणको परिणमनशील ज्ञानगुणकी पर्याय कहना। यहांपर स्वजातीय गुणमें स्वजातीय पर्यायका आरोपण किया गया है। जो नय पर्यायमें द्रव्यका आरोपण करता है उसको पर्यायमें द्रव्यका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे-- स्थूलस्कन्धको पुद्गलद्रव्य कहना। यहांपर स्वजातीय विभावपर्यायमें स्वजातीय द्रव्यका आरोपण किया गया है। जो नय पर्यायमें गुणका आरोपण करता है उसको पर्यायमें गुणका आरोपण नामक असद्भूतव्यवहारनय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं जैसे-- उत्तमरूपसे युक्त शरीरको उत्तमरूप कहना अथवा ज्ञानगुणकी पर्यायको ज्ञानगुण कहना। यहांपर स्वजातीय पर्यायमें स्वजातीय गुणका आरोपण किया गया है।

उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथग् कृतः।

अर्थ-- उपचार प्रथक् नय नहीं है इसालिये उसको प्रथक्- स्वतंत्र नय नहीं कहा।

उपचारकी प्रवृति।

मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते।

अर्थ-- मुख्यके अभाव होनेपर और प्रयोजन अथवा निमित्तके होनेपर उपचारकी प्रवृत्ति होती है।

सम्बंधका खुलासा।

सोऽपि संबंधोऽविनाभावः, संश्लेषः संबंधः, परिणामपरिणामिसंबंधः, श्रद्धाश्रद्धेयसंबंधः, ज्ञानज्ञेयसंबंधः, चारित्रचर्यासंबंधश्चेत्यादिः, सत्यार्थः, असत्यार्थः सत्यासत्यार्थश्चेत्युपचरितासद्भूतव्यवहारनयास्यार्थः।

अर्थ-- वह संबंध, अविनाभावसंबंध, संयोगसंबंध, परिणामपरिणामिसंबंध, श्रद्धाश्रद्धेयसंबंध, ज्ञानज्ञेयसंबंध चारित्रचर्यासंबंध आदि तथा सत्यार्थरूप असत्यार्थरूप और सत्यासत्यार्थरूप होता है। इस प्रकार उपचरित असद्भूतव्यवहारनयका विषय समझना चाहिये।

अध्यात्मभाषासे नयोंका कथन।

अथ पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते।

अर्थ-- अब फिर भी अध्यात्मभाषासे नयोंका कथन करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेद ।

तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च ।

अर्थ– नयोंके मूल दो भेद हैं– एक निश्चयनय और दूसरा व्यवहारनय ।

लक्षण ।

तत्र निश्चयनयोऽभेदविषयो व्यवहारो भेदविषयः ।

अर्थ-- उनमेंसे जो नय गुणगुणीके अभेदको विषय करता है उसको निश्चयनय कहते हैं । और जो नय गुणगुणीके भेदको विषय करता है उसको व्यवहारनय कहते हैं ।

निश्चयनयके भेद ।

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च ।

अर्थ— उनमेंसे निश्चयनय दो प्रकारका है । एक शुद्धनिश्चयनय और दूसरा अशुद्धनिश्चयनय ।

शुद्धनिश्चयनयका लक्षण ।

तत्र निरुपाधिकगुणगुण्यभेदविषयकः शुद्धनिश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति ।

अर्थ– उनमेंसे जो नय निरुपाधिक--कर्मोपाधिसे रहित गुण और गुणीको अभेदरूपसे ग्रहण करता है--विषय करता है उसको शुद्धनिश्चयनय कहते हैं । जैसे जीव केवलज्ञानादिक स्वरूप है।

अशुद्धनिश्चयनयका लक्षण ।

सोपाधिकविषयोऽशुद्धनिश्चयो यथा मतिज्ञानदयो जीवः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— जो नय सोपाधिक– कर्मोपाधिसे सहित गुण तथा गुणीको अभेदरूपसे विषय करता है उसको अशुद्धनिश्चयनय कहते हैं जैसे- जीव मतिज्ञानादिक स्वरूप है ।

व्यवहारनयके भेद ।

व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च ।

अर्थ– व्यवहारनय दो प्रकारका है– एक सद्भूतव्यवहारनय और दूसरा असद्भूतव्यवहारनय ।

सद्भूतव्यवहारनयका लक्षण ।

तत्रैकवस्तुविषयः सद्भूतव्यवहारः ।

अर्थ–- इन दोनों भेदोंमें, जो नय एक वस्तुको विषय करता है उसको सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं ।

असद्भूतव्यवहारनयका लक्षण ।

भिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूतव्यवहारः ।

अर्थ– जो नय भिन्न– अनेक वस्तुको विषय करता है उसको असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं ।

सद्भूतव्यवहारनयके भेद ।

तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात् ।

अर्थ– उन दोनों प्रकारके नयोंमेंसे सद्भूतव्यवहारनय दो प्रकारका है । पहिला उपचरितसद्भूतव्यवहारनय और दूसरा अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपचरितसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषय उपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः।

अर्थ– उन दोनों उपचरित और अनुपचरितसद्भूतव्यवहारके भेदोंमें, जो नय उपाधि सहित गुण और गुणीके भेदको विषय करता है उसको उपचरितसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे जीवके मतिज्ञानादिकगुण कहना। यहांपर ज्ञान गुण है और आत्मा गुणी है तथा मतिज्ञानादिकगुण कर्मरूप उपाधिके निमित्तसे होते हैं और स्वतंत्र निर्लेप आत्माके केवल शुद्ध ज्ञान गुणही पाया जाता है अतएव मतिज्ञानको सोपाधि होनेसे उसे आत्माका कहना उपचरितसद्भूतव्यवहारनयका विषय होता है।

अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

निरुपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः।

अर्थ— जो नय उपाधि रहित गुण और गुणीके भेदको विषय करता है उसको अनुपचरित-सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे जीवके केवलज्ञानादिक गुण। यहांपर केवलज्ञान गुण है और आत्मा गुणी है। तथा केवलज्ञान शुद्ध आत्माका धर्म है इसलिये इसको गुण और गुणीके भेदसे ग्रहण करनेवाला अनुपचरित-सद्भूतव्यवहारनय है।

असद्भूतव्यवहारनयके भेद।

असद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात्।

अर्थ– उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय और अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनयके भेदसे असद्भूतव्यवहारनय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो प्रकारका है।

उपचरितअसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

तत्र संश्लेषरहितवस्तुसंबंधविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनमिति।

अर्थ— असद्भूतव्यवहारनयके भेदोंमें, जो नय संबंध रहित भिन्न वस्तुओंके संबंधको विषय करता है उसको उपचरितासद्भूतव्यवहारनय कहते हैं जैसे देवदत्तका धन। यहांपर देवदत्त भिन्न और धन भिन्न है। परंतु देवदत्तका धनपर स्वामित्व होनेसे संबंधका उपचार किया गया है अतएव "देवदत्तका धन" यह उपचरितअसद्भूतव्यवहारनयका विषय होता है।

अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनयका लक्षण।

संश्लेषरहितवस्तुसंबंधविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति।

अर्थ— जो नय संयोग संबंधसे युक्त भिन्न दो पदार्थोंके संबंधको विषय करता है उसको अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे जीवका शरीर। यहांपर जीवका शरीरके साथ संयोग संबंध है परंतु दोनों पदार्थ अत्यंत भिन्न हैं अतएव "जीवका शरीर" यह अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयका विषय है।

इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीमद्देवसेनसूरिविरचिता परिसमाप्ता।

इसप्रकार सुखपूर्वक बोध होनेकेलिए श्रीमद्देवसेनसूरि विरचित
आलापपद्धति ग्रंथ समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति आलापपद्धतिः समाप्ता.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi